दृष्टि The Vision

RAS Series : Book-1

राजस्थान, भारत एवं विश्व का इतिहास तथा कला-संस्कृति

(पूर्णतः नवीन पाठ्यक्रम पर आधारित पुस्तक)

द्वितीय संस्करण

RAS/RTS सहित अधीनस्थ सेवाओं एवं
पटवार, एलडीसी, टीचर्स ग्रेड (I & II) सुपरवाइज़र,
सब-इंस्पेक्टर सहित अन्य एकदिवसीय परीक्षाओं के लिये संपूर्ण पुस्तक

अब घर बैठे कीजिये आई.ए.एस. की तैयारी क्योंकि हम आ रहे हैं आपके घर

दृष्टि The Vision

हिंदी साहित्य

द्वारा- डॉ. विकास दिव्यकीर्ति

मोड : ऑनलाइन / पेन ड्राइव

IAS परीक्षा में सर्वाधिक अंकदायी वैकल्पिक विषय 'हिंदी साहित्य' पढ़िये सिविल सेवा जगत के सबसे लोकप्रिय शिक्षक डॉ. विकास दिव्यकीर्ति से। इस कोर्स में शामिल हैं 157 रोचक कक्षाएँ, जिनमें IAS का संपूर्ण पाठ्यक्रम एकदम आधारभूत स्तर से शुरू करते हुए पढ़ाया गया है। इन कक्षाओं को गंभीरता से करने और क्लास नोट्स (जो आपके पास भेजे जाएंगे) को पढ़ने के बाद आपको कुछ भी अतिरिक्त करने की आवश्यकता नहीं होगी। इन कक्षाओं से परीक्षा की तैयारी तो होगी ही, साथ ही जीवन के प्रति सुलझा हुआ नज़रिया भी विकसित होगा।

यह कोर्स ऑनलाइन मोड (ऐप) के अलावा पेन ड्राइव तथा टैबलेट मोड में भी उपलब्ध है। यदि आप इंटरनेट नेटवर्क की कमी या किसी अन्य कारण से यह कोर्स मोबाइल फोन की बजाय लैपटॉप/कंप्यूटर या टैबलेट पर करना चाहते हैं तो कृपया ऐप के होम पेज पर जाकर पेनड्राइव कोर्स या टैबलेट कोर्स की टैब पर क्लिक करें।

एडमिशन प्रारंभ

कक्षाओं की गुणवत्ता को परखने के लिये डेमो वीडियोज़ हमारे यूट्यूब चैनल Drishti IAS की प्लेलिस्ट Online Courses में देखें	ऑनलाइन कोर्स से जुड़ी हर जानकारी के लिये हमारी वेबसाइट www.drishtiias.com या Drishti Learning App पर FAQs पेज देखें

इस कोर्स से संबंधित किसी भी अतिरिक्त जानकारी के लिये 9311406440-41 नंबर पर सीधे बात या मैसेज करें

हिंदी साहित्य : कोर्स की विशेषताएँ

1. UPSC के पाठ्यक्रम के लिए 400+ घंटे की कक्षाएँ।
2. UPPCS एवं BPSC के विशिष्ट टॉपिक्स के लिये 30-30 घंटे की पृथक कक्षाएँ।
3. प्रत्येक कक्षा को 3 बार देखने की सुविधा, ताकि आप टॉपिक को पढ़ने के बाद रिवीज़न भी कर सकें।
4. हर क्लास में उस टॉपिक से IAS, PCS में पूछे गए और अन्य संभावित प्रश्नों का विस्तृत अभ्यास।
5. स्टेट-ऑफ-द-आर्ट कैमरा और साउंड क्वालिटी, जो क्लास के अनुभव को एकदम वास्तविक जैसा बनाती है।
6. पाठ्यक्रम की टेक्स्ट बुक्स व नोट्स भी इस कार्यक्रम में शामिल, जिनके अलावा किसी अन्य अध्ययन सामग्री की आवश्यकता नहीं।

अधिक जानकारी के लिये अपने एंड्रॉयड फोन पर आज ही इंस्टॉल करें

Drishti Learning App

दृष्टि आई.ए.एस. (दिल्ली) : 641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-09 ☎ 87501 87501	दृष्टि आई.ए.एस. (प्रयागराज) : ताशकंद मार्ग, निकट पत्रिका चौराहा, सिविल लाइन्स, प्रयागराज ☎ 87501 87501

दृष्टि The Vision

RAS Series : Book-1

राजस्थान, भारत एवं विश्व का इतिहास तथा कला-संस्कृति

Drishti Publications

दृष्टि पब्लिकेशन्स

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009

दूरभाष: 011-47532596, 87501 87501

Website: www.drishtiias.com

E-mail : booksteam@groupdrishti.com

शीर्षक : राजस्थान, भारत एवं विश्व का इतिहास तथा कला-संस्कृति

लेखक : टीम दृष्टि

द्वितीय संस्करण- ***अगस्त 2021***

मूल्य : ₹ 495

प्रकाशक

VDK Publications Pvt. Ltd.
(दृष्टि पब्लिकेशन्स)

641, प्रथम तल,

डॉ. मुखर्जी नगर,

दिल्ली-110009

विधिक घोषणाएँ

- इस पुस्तक में प्रकाशित सूचनाएँ, समाचार, ज्ञान एवं तथ्य पूरी तरह से सत्यापित किये गए हैं। फिर भी, यदि कोई जानकारी या तथ्य गलत प्रकाशित हो गया हो तो प्रकाशक, संपादक या मुद्रक उससे किसी व्यक्ति-विशेष या संस्था को पहुँची क्षति के लिये ज़िम्मेदार नहीं है।
- हम विश्वास करते हैं कि इस पुस्तक में छपी सामग्री लेखकों द्वारा मौलिक रूप से लिखी गई है। अगर कॉपीराइट उल्लंघन का कोई मामला सामने आता है तो प्रकाशक को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जाएगा।
- सभी विवादों का निपटारा दिल्ली न्यायिक क्षेत्र में होगा।
- © **कॉपीराइट:** VDK Publications Pvt. Ltd. (दृष्टि पब्लिकेशन्स), सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रकाशन अथवा उपयोग, प्रतिलिपीकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुन: प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानांतरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से (इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी अन्य प्रकार से) प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना नहीं किया जा सकता।
- एम.पी. प्रिंटर्स, बी-220, फेज़-2, नोएडा (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

अनुक्रम

खंड-A: राजस्थान का इतिहास, कला-संस्कृति, परंपरा एवं विरासत

1. राजस्थान का इतिहास .... 1 – 39
2. आधुनिक राजस्थान का उदय एवं प्रमुख घटनाएँ .... 40 – 67
3. राजस्थान की वास्तु परपंरा एवं प्रदर्शन कला .... 68 – 123
4. राजस्थानी संस्कृति एवं सामाजिक जीवन .... 124 – 134
5. राजस्थान में धार्मिक जीवन, लोक-देवता एवं प्रमुख संत .... 135 – 151
6. राजस्थानी भाषा एवं साहित्य .... 152 – 164
7. महत्त्वपूर्ण पर्यटन स्थल .... 165 – 180
8. राजस्थान के प्रमुख व्यक्तित्व .... 181 – 196

खंड-B: प्राचीन भारत

9. प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत .... 1 – 7
10. पाषाणयुगीन संस्कृति .... 8 – 11
11. सिंधु घाटी सभ्यता .... 12 – 18
12. वैदिक काल .... 19 – 24
13. छठी शताब्दी ई.पू. का काल (महाजनपद काल) .... 25 – 35
14. मौर्य साम्राज्य .... 36 – 44
15. मौर्योत्तर काल .... 45 – 53
16. संगम काल .... 54 – 57
17. गुप्त साम्राज्य .... 58 – 70
18. गुप्तोत्तर काल .... 71 – 78

खंड-C: मध्यकालीन भारत

19. पूर्व मध्यकालीन भारत .... 1 – 13
20. दिल्ली सल्तनत .... 14 – 33
21. क्षेत्रीय शक्तियाँ : 13वीं-15वीं सदी 34– 37
22. विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य 38– 43
23. भक्ति एवं सफूी आंदोलन .... 44 – 50
24. मुगल साम्राज्य .... 51 – 73
25. मराठा साम्राज्य .... 74 – 78

खंड-D: आधुनिक भारत

26. यूरोपीय कंपनियों का भारत आगमन .... 1 – 6
27. ब्रिटिश कंपनी द्वारा भारत विजय .... 7 – 16
28. ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति .... 17 – 20
29. ब्रिटिश शासन का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव .... 21 – 32
30. ब्रिटिश भारत में औपनिवेशिक नीतियाँ .... 33 – 46
31. ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीयों की प्रतिक्रिया .... 47 – 63
32. आधुनिक भारत में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन ...... 64 – 77
33. राष्ट्रवाद का उदय .... 78 – 86
34. राष्ट्रीय आंदोलन का प्रथम चरण .... 87 – 95
35. राष्ट्रीय आंदोलन का द्वितीय चरण .... 96 – 115
36. ब्रिटिशकालीन प्रमुख अधिनियम तथा प्रशासक .... 116 – 127
37. स्वातंत्र्योत्तर भारत .... 128 – 142
38. प्रमुख व्यक्तित्व .... 143 – 148
39. भारतीय धरोहर .... 149 – 192

खंड-E: विश्व इतिहास

40. पुनर्जागरण एवं धर्म सुधार .... 1 – 8
41. प्रबोधन .... 9 – 12
42. औद्योगिक क्रांति .... 13 – 17
43. प्रथम विश्व युद्ध .... 18 – 24
44. द्वितीय विश्व युद्ध .... 25 – 31
45. एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका में साम्राज्यवाद .... 32 – 37
46. एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका में उपनिवेशवाद .... 38 – 44

1 राजस्थान का इतिहास
(History of Rajasthan)

राजस्थान का प्राचीन इतिहास एवं प्रागैतिहासिक स्थल (Ancient History and Pre-Historical Sites of Rajasthan)

राजस्थान का इतिहास विविधता एवं निरन्तरता के साथ गौरवमयी धरोहर रहा है। कहा जाता है कि राजस्थान में पुरा सम्पदा का अटूट खजाना है। कहीं पर प्रागैतिहासिक शैल चित्रों की छटा है, तो कहीं प्राचीन संस्कृतियों के प्रमाण हैं। कहीं प्रस्तर प्रतिमाओं का शैलिक्पक प्रतिमान तो कहीं शिलालेखों के रूप में पाषाणों पर उत्कीर्ण गौरवशाली इतिहास। कहीं पर समय का ऐतिहासिक बखान करते प्राचीन सिक्के तो कहीं वास्तुकला के उत्कृष्ट प्रतीक। राजस्थान के शहरों, कस्बों एवं उजड़ी बस्तियों में उपासना स्थल, भव्य प्रासाद, उभेद्य दुर्ग एवं जीवतं स्मारकों का संगम देखने को मिलता है।

प्राचीनकालीन ग्रामीण एवं नगरीय जीवन के अध्ययन में जहाँ उत्खनन से प्राप्त पुरातात्त्विक सामग्रियाँ महत्त्वपूर्ण हैं तथा आहड़ (उदयपुर), कालीबंगा (हनुमानगढ़), गिलुंड (राजसमंद) व गणेश्वर (सीकर) की सभ्यताओं द्वारा विकास क्रम को समझने में सहायता मिलती है, वहीं साहित्यिक स्रोतों में कवि श्यामलदास कृत वीर विनोद, गौरीशंकर हीराचंद 'ओझा' द्वारा लिखित राजपूताने का प्राचीन इतिहास तथा कर्नल जेम्स टॉड द्वारा लिखित एनाल्स एंड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान नामक पुस्तकें भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

राजस्थान के इतिहास के विविध आयामों तथा पहलुओं को समझने की दृष्टि से विभिन्न शिलालेखों, प्रस्तर प्रशस्तियों तथा स्मारकों की भी उल्लेखनीय भूमिका है।

मरुभूमि में बागौर जैसे मध्यपाषाणकालीन और नवपाषाणकालीन इतिहास की उपस्थिति प्रस्तुत करने वाले स्थल हैं। कालीबंगा, आहड़, गणेश्वर व बैराठ जैसी पाषाणकालीन, सिंधुकालीन और ताम्रकालीन सभ्यताओं का विकास यहाँ हुआ जो इसके इतिहास की प्राचीनता सिद्ध करती हैं। इन प्राचीन स्थलों पर मानव बस्तियों के प्रमाण मिले हैं। कालीबंगा जैसे पाषाणकालीन एवं आहड़ जैसे सिंधुकालीन स्थलों का विकास यहीं पर हुआ है। आहड़ व गणेश्वर जैसी ताम्रकालीन सभ्यताओं का भी जन्म यहीं पर हुआ है।

राजस्थान में पूर्व मध्यकाल में अनेक जातियों द्वारा राजस्थान पर आक्रमण के विरोधस्वरूप राजपूत जातियों का उदय एवं राजस्थान में राजपूत राज्यों की स्थापना होना प्रमुख घटनाएँ हैं। इसी समय यहाँ अनेक राजपूत राजवंशों का उदय हुआ। इन राजवंशों में गुहिल, प्रतिहार, परमार, चौहान व जैसलमेर के भाटी इत्यादि प्रमुख हैं। वहीं मध्यकालीन राजस्थान में राजपूत शासकों और सामंतों ने मुस्लिम शक्ति को रोकने का समय-समय पर भरपूर प्रयास किया। राजपूतों द्वारा अनवरत तीव्र विरोध का सिलसिला चलता रहा। सत्ता संघर्ष में राजपूत शासक निर्णायक युद्ध जीत नहीं सके। इसका मुख्य कारण राजपूतों में आपसी सहयोग का अभाव, युद्ध लड़ने की कमज़ोर रणनीति तथा सामंतवाद था।

इसी काल में (मध्यकाल में) इस वीर-प्रसूति धरा ने माघ, हरिभद्रसूरी, चंदबरदाई, सूर्यमल्ल मीसण, कवि करणीदान, दुरसा आढ़ा, नैणसी जैसे विद्वान लेखक तथा वीर पुरुषों को जन्म दिया साथ ही इस भूमि पर धार्मिक आंदोलन और विभिन्न लोक धर्म संस्कृतियों का उदय भी इसी काल में हुआ।

18वीं सदी आधुनिक राजस्थान के इतिहास के लिये काफी उतार-चढ़ाव वाली रही। 1857 की क्रांति, अनेक सामाजिक, धार्मिक, किसान व जनजाति आंदोलन इस काल की विशेषता रहे हैं। अनेक बिखरी रियासतों व रजवाड़ों के सम्मेलनों द्वारा एकीकरण के पश्चात् आज का राजस्थान इस रूप में सामने आता है। जिस भू-भाग को वर्तमान राजस्थान कहा जाता है, उसे जॉर्ज थॉमस ने 1800 ई. में 'राजपूताना' कहा तथा कर्नल जेम्स टॉड ने 1829 ई. में इसे 'रायथान' अथवा 'राजस्थान' नाम दिया।

राजस्थान की प्राचीन सभ्यताएँ व जनजीवन *(Ancient Civilizations and Public Life of Rajasthan)*

राजस्थान के पुरातात्त्विक स्रोतों के सर्वेक्षण का कार्य सर्वप्रथम **ए.सी.एल. कार्लाइल** ने किया था। तत्पश्चात् वृहद् स्तर पर इसे डी. आर. भंडारकर, दयाराम, एच.डी. सांकलिया, बी.बी. लाल, जीवन खरकवाल तथा आर.सी. अग्रवाल जैसे विद्वानों ने अंजाम तक पहुँचाया।

राजस्थान की अरावली श्रेणियों तथा चंबल नदी घाटी के क्षेत्रों में प्रागैतिहासिक विभिन्न शैलाश्रयों की प्राप्ति हुई है, जिसमें विभिन्न अस्थि-अवशेष, पाषाण (प्रस्तर) निर्मित उपकरण मिले हैं। इन्हीं शैलाश्रयों पर मानव निर्मित शैलचित्रों से तत्कालीन मानव जीवन का विवरण प्राप्त होता है। इन चित्रों में आखेट के दृश्य सर्वाधिक हैं, जो बूँदी में छाजा नदी (गेंदी का छाज्जा) तथा कोटा में चंबल नदी घाटी क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं।

इसके अतिरिक्त चित्रित शैलाश्रय विराट नगर (जयपुर) तथा हरसौरा (अलवर) से भी प्राप्त हुए हैं।

नवपाषाणकालीन पुरातात्त्विक अवशेष मुख्य रूप से चित्तौड़गढ़ में बेड़च नदी व गंभीरी नदी के किनारे प्राप्त हुए हैं, जिसमें कृषि-जीवन तथा पशुपालन संबंधी साक्ष्य विशेष रूप से प्राप्त हुए हैं। तिलवाड़ा (बाड़मेर) तथा बागौर (भीलवाड़ा) नामक स्थानों से नवपाषाणकालीन औज़ार बड़ी मात्रा में प्राप्त हुए हैं, जिस कारण इस युग को गार्डन चाइल्ड नामक प्रसिद्ध पुरावेत्ता ने पाषाणकालीन क्रांति की संज्ञा भी दी है। मरुभूमि की दृषद्वती व सरस्वती जैसी नदियाँ आर्य बस्तियों की शरणस्थली रही हैं। ये बस्तियाँ बाद में दोआब स्थानों की ओर बढ़ीं, जैसे- पंजाब व गंगा के मैदानों की ओर। इंद्र और सोम की अर्चना में मंत्रों की रचना, यज्ञ की महत्ता की स्वीकृति और जीवन-मुक्ति का ज्ञान आर्यों को संभवत: यहीं से प्राप्त हुआ। प्राचीन ग्रंथों व पौराणिक गाथाओं के अनुसार जांगल देश (बीकानेर, जोधपुर), मरुकांतार (मारवाड़) आदि भागों से बलराम और कृष्ण के आख्यानों का संबंध भी प्राप्त होता है जो आर्यों की यादव शाखा से संबंधित बताए गए हैं।

2 आधुनिक राजस्थान का उदय एवं प्रमुख घटनाएँ
(Emergence of Modern Rajasthan and Major Events)

आधुनिक राजस्थान के उदय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of Emergence of Modern Rajasthan)

सन् 1707 में औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार युद्ध प्रारंभ हो गया। उधर मराठों ने अपनी शक्ति बढ़ानी प्रारंभ कर दी। बाजीराव पेशवा के राज्य की सीमा आगरा और दिल्ली को छूने लगी। पेशवा की आज्ञा से होल्कर और सिंधिया राजस्थान के राजाओं से चौथ वसूलने लगे। दोनों मराठा घरानों ने पिंडारियों के साथ मिलकर राजस्थान की विभिन्न रियासतों को परेशान किया। अत: इस समस्या के समाधान हेतु 17 जुलाई, 1734 को मेवाड़ के महाराणा जगत सिंह की अध्यक्षता में राजस्थान के सभी राजा हुरड़ा (भीलवाड़ा) में एकत्र हुए। इसमें उन्होंने संयुक्त रूप से एक समझौता कर मराठों का सामना करने का निर्णय लिया। परंतु ईर्ष्यावश कुछ राजा करार से अलग हो गए। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और कोटा के राजाओं ने अब मुगल बादशाह मुहम्मद शाह के नेतृत्व में मराठों के विरुद्ध सैनिक अभियान शुरू किया, किंतु आपसी फूट के कारण यह अभियान असफल रहा।

दूसरी ओर अंग्रेज़ तेज़ी से भारत में पैर जमा रहे थे। अंग्रेज़ फ्राँसीसियों को हराने के बाद 1757 ई. में, प्लासी के युद्ध में नवाब सिराजुद्दौला को हराकर बंगाल के स्वामी बन गए। इस समय राजस्थानी राजा मराठों और पिंडारियों के आक्रमण से त्रस्त थे तथा वे लड़खड़ाती मुगल सल्तनत के भरोसे अपने को सुरक्षित महसूस नहीं कर सकते थे। अत: इनके पास अंग्रेज़ों की शरण में जाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। अंग्रेज़ों के पास राजस्थान एवं देश के अन्य राजाओं को स्वयं के संरक्षण में लेने का यह एक स्वर्णिम अवसर था। लॉर्ड हार्डिंग्स ने इस संबंध में **आश्रित पार्थक्य (Subordinate Alliance)** की नीति का पालन किया, जिसका पहला शिकार हैदराबाद का निज़ाम हुआ।

राजस्थान में ब्रिटिश संधियाँ *(British Treaties in Rajasthan)*

ईस्ट इंडिया कंपनी का राजपूत राज्यों से सहायक संधि करने का मुख्य उद्देश्य अपनी (अंग्रेजी) प्रभुसत्ता को स्थापित करना था राजस्थान में अंग्रेज़ों की प्रथम संधि नवंबर 1817 में करौली में हुई। इसके बाद केवल 14 माह के अल्प समय में ही सन् 1818 तक सभी रियासतों ने ईस्ट इंडिया कंपनी से अलग-अलग संधियाँ कर मराठों और पिंडारियों के आक्रमणों से राहत की साँस ली। अंग्रेज़ों ने इसी समय अजमेर का इलाका भी दौलतराम सिंधिया से प्राप्त कर लिया था।

ईस्ट इंडिया कंपनी और राजस्थान की विभिन्न रियासतों के बीच हुए अहदनामा कहने मात्र को संधि पत्र थे। राजाओं ने उक्त संधि-पत्रों के आधार पर अंग्रेज़ों को (मराठों को दी जाने वाली 'चौथ' के स्थान पर) 'खिराज़' ('कर' का एक प्रकार) देना स्वीकार किया। ईस्ट इंडिया कंपनी ने रियासतों की रक्षा की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और यह पाबंदी लगा दी कि वे अन्य किसी रियासत के साथ किसी प्रकार की संधि या अहदनामा नहीं कर सकेंगे। अहदनामों में राजस्थान की अधिकतर रियासतों को अंदरूनी मामलों में खुद-मुख्तारी अर्थात् आंतरिक स्वतंत्रता दी गई थी। किंतु अंग्रेज़ों ने अपनी कुटिल नीतियों के तहत उक्त रियासतों के अंदरूनी मामलों में सक्रिय हस्तक्षेप प्रारंभ कर दिया। **जोधपुर के महाराजा मान सिंह** को अपने शासनकाल के दौरान पग-पग पर अंग्रेज़ों के हस्तक्षेप का सामना करना पड़ा और अंत में स्वयं को असहाय पाकर उन्हें साधू बनना पड़ा। जयपुर के महाराजा (राम सिंह) की नाबालिगी के समय महारानी ने अंग्रेज़ों की इच्छा के विपरीत झूंथाराम सिंघवी को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया, जिसकी परिणति यह हुई कि राज्य के कई उच्च अधिकारियों को फाँसी दे दी गई।

इन घटनाओं से राजस्थान के राजा किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। वे अहदनामों (संधि-पत्र) में निहित आंतरिक स्वतंत्रता की शर्तों को ही भूल गए। इस प्रकार देश की अन्य देशी रियासतों की तरह राजस्थान की रियासतों पर भी अंग्रेज़ों की सार्वभौमिक सत्ता स्थापित हो गई। राजाओं के अपमान की यह चरम सीमा थी। दूसरी ओर जो अंग्रेज़ व्यापारी बनकर इस देश में आए थे, वे धीरे-धीरे सर्वशक्तिमान बनते जा रहे थे।

राजस्थान में राजा असहाय बन चुके थे। इनके वंश परंपरागत अधिकारों पर कुठाराघात होने लगा। कंपनी ने राजाओं के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करके देशी नरेशों की प्रभुसत्ता पर चोट की। स्वयं उनकी स्थिति कंपनी के सामंतों व जागीरदारों जैसी हो गई। कंपनी की नीतियों से सामंतों के पद, मर्यादा व अधिकारों को भी आघात लगा। कंपनी द्वारा अपनाई गई आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप राजा, सामंत, किसान, व्यापारी, शिल्पी एवं मज़दूर सभी पीड़ित हुए। कंपनी के साथ की गई संधियों के कई दुष्परिणाम सामने आए, जिन्होंने 1857 की क्रांति की पृष्ठभूमि बनाई।

1857 की क्रांति (The Revolution of 1857)

1857 की क्रांति का विस्फोट सर्वप्रथम 10 मई, 1857 ई. को मेरठ में हुआ। बहादुरशाह जफर के नेतृत्व में नाना साहब, तात्या टोपे, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, कुँवर सिंह आदि ने अंग्रेज़ों के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष का बिगुल बजाया। इसका परिणाम यह हुआ कि राजस्थान में भी अंग्रेज़ों के खिलाफ विरोध के स्वर उठे तथा राज्य की जनता ने उत्साह के साथ विद्रोही शक्तियों का क्रांति में सहयोग किया।

राजस्थान में 1857 की क्रांति के उत्तरदायी कारण *(Responsible Causes of the Revolution of 1857 in Rajasthan)*

राजस्थान में 10 मई, 1857 को मेरठ (उ.प्र.) से प्रारंभ हुई 1857 की क्रांति ने राजस्थान में अपनी पृष्ठभूमि बनाने में जिन घटनाओं को उत्तरदायी माना गया है, वे इस प्रकार हैं–

3 राजस्थान की वास्तु परपंरा एवं प्रदर्शन कला
(Architectural Tradition & Performing Art of Rajasthan)

राजस्थान में मूर्तिकला *(Sculpture Art in Rajasthan)*

संसार की समस्त मानव निर्मित वस्तुएँ (दृश्य व अदृश्य) मनुष्यों के मस्तिष्क की सृजनशील क्षमता के ही परिणाम हैं। इसी सृजनात्मकता का एक परिणाम मूर्तिकला है। राजस्थान की मूर्तिकला का इतिहास लगभग साढ़े चार हज़ार वर्ष पुराना है। यहाँ से विभिन्न कालों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ प्राप्त मूर्तियों को कालों के अनुसार वर्गीकृत किया गया है। इन मूर्तियों में प्रस्तर, धातु, संगमरमर, काष्ठ व मिट्टी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। राजस्थान में अनेक स्थानों पर ये मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें देवी-देवताओं, यक्ष-यक्षिणी, पशु-पक्षी, जैन, बौद्ध, आम-जन की गतिविधियों की प्रतिमाएँ शामिल हैं।

पारंपरिक मूर्तिकला

शुंग व कुषाणकालीन मूर्तिकला

शक-कुषाण काल में देव मूर्तियाँ स्पष्ट रूप धारण करने लगीं। इस काल में प्राप्त अन्य मूर्तियाँ इस प्रकार हैं–

यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियाँ: शुंग-कुषाण काल में देव मूर्तियाँ बनने लगी थीं। यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियों को भी इसी रूप अर्थात् देव स्वरूप ही माना गया है। वर्तमान में भी स्थानीय गाँवों में इन्हें 'ग्राम-देवता' के रूप में माना जाता है। इनके कानों में भारी कुंडल, सिर पर पगड़ी, कंधों और भुजाओं पर उत्तरीय, गले में भारी कंठा, छाती पर चपटा तिकोना हार इत्यादि रहते हैं। ये मूर्तियाँ सदैव आशीर्वाद की मुद्रा में होती थीं, अर्थात् दाहिना हाथ अभय मुद्रा में व बायाँ अमृत घड़े को धारण किये रहती हैं।

राजस्थान में प्राप्ति स्थल: एक 8 फीट 8 इंच की 'जाखबाबा' की विशाल प्रतिमा चतुर्भुज रूप में (आगे-पीछे से उकेरी हुई) भरतपुर के नोह में मिली है। अन्य स्थल जहाँ शुंगकालीन यक्ष-यक्षिणी की प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं, वे हैं– नोह, वीरावई, सोगर, पीरनगर आदि। यहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ भरतपुर के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

शुंगकाल में विशाल प्रतिमाएँ बनती थीं, कालांतर में मृण्मयी मूर्तियाँ बनने लगीं। ये मूर्तियाँ तत्कालीन समय में पूजी जाती थीं। इन्हीं की प्रेरणा से विभिन्न संप्रदायों ब्राह्मण, बौद्ध व जैन धर्म की देव मूर्तियों का उद्भव व जन्म हुआ। यक्ष के बाद कुबेर की मूर्तियाँ अस्तित्व में आने लगीं। सभी संप्रदायों में उन्हें प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। राजस्थान में इस तरह की असंख्य मूर्तियों का निर्माण होने लगा।

शैव मूर्तियाँ: ये शिव जी के पुरुष विग्रह व लिंग विग्रह रूप की मूर्तियाँ हैं जो मुख्यत: भारत के उत्तरी भाग में प्राप्त हुई हैं। शैव मूर्तिकला में राजस्थान का अनुपम योगदान है, मुख्यत: ब्रजमंडल से प्रभावित भरतपुर क्षेत्र का। राजस्थान में शैव मूर्तिशिल्प की दृष्टि से भरतपुर क्षेत्र के चॉमा, भंडपुरा तथा गामड़ी आदि स्थानों से शुंग-कुषाणकालीन शिवलिंग प्राप्त हुए हैं। उत्तर कुषाणकाल के आते-आते शिव के मानवाकार विग्रह की अभिव्यक्ति दिखने लगती है। राजस्थान के उत्तरी भाग में रंगमहल, मुंडा आदि की कला सामग्री इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

रंगमहल से एकमुखी शिवलिंग की विशाल (10 फीट 6 इंच लंबी) मृण्मूर्ति प्राप्त हुई है। इसका मुख भाग जटामुकुट धारी है जो शिव को मानवाकृति प्रदान कर लिंग विग्रह के साथ ही पुरुष विग्रह का एक सुंदर समावेश है। इस काल में शिव के दोनों विग्रह रूपों के साथ ही शिव के परिवार के अन्य देवी-देवताओं का अंकन भी प्रारंभ हो चुका था। सिंहवाहिनी दुर्गा जो चतुर्भुज देवी के रूप में प्रसिद्ध है, अपने ऊपरी हाथों में ढाल व वज्र धारण किये हुए हैं व निचले बाएँ हाथ से महिषरूपी असुर की जीभ पकड़ रखी है। इसका व कार्तिकेय का फलक राजस्थान से प्राप्त हुआ है। साथ ही मालव नगर (टोंक) से खड़िया मिट्टी विनिर्मित देवी का जो फलक मिला है, वह शुंगकालीन कला के उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

वैष्णव मूर्तियाँ: राजस्थान से प्राप्त होने वाली वैष्णव मूर्तियाँ उत्तर कुषाणकाल व आरंभिक गुप्तकाल की हैं। यहाँ मुख्य रूप में मालवनगर (टोंक), पीलीबंगा (गंगानगर), सांभर (जयपुर) से प्राप्त लध्वाकर विष्णु फलक प्रमुख हैं। इनमें सांभर से प्राप्त फलक प्रस्तर जबकि पीलीबंगा व नगर से प्राप्त फलक खड़िया मिट्टी के बने हैं।

शिलालेखों से प्राप्त साक्ष्यों में पाया गया है कि प्राचीन माध्यमिका अर्थात् नगरी में शुंगकाल में संकर्षण-वासुदेव (कृष्ण-बलराम) की पूजा का प्रचलन था। चबूतरे या सथंडिल पर देव मूर्तियों या उनसे जुड़े प्रतीक चिह्नों को रखकर पूजा की जाने की परंपरा थी। पुष्कर के समीप नाँद (अजमेर) में कुषाणकालीन शिवलिंग है जिसके निचले संभाग में चार आकृतियाँ आमूर्तित हैं जिनमें वासुदेव, एकानेशा, विष्णु व बलराम हैं। पीलीबंगा (गंगानगर) से मिले फलक खड़िया मिट्टी से निर्मित हैं व द्विभुजी विष्णु के हाथों में गदा तथा चक्र विद्यमान हैं।

आमेर संग्रहालय व नगर (टोंक) से प्राप्त चतुर्भुजी विष्णु की प्रतिमा के वामहस्त में साधारण चक्र तथा दक्षिण हस्त में वृहदाकार गदा है। आमेर संग्रहालय में ही प्रदर्शित नलियासर सांभर के उत्खनन से प्राप्त दोनों फलकों में देवता को चतुर्भुजी बताया गया है। साथ ही प्रथम फलक की प्रतिमा सिरविहीन, हाथ में मूसलाकार गदा व निचला हाथ अभय मुद्रा में है। वहीं दूसरे फलक में मुकुट, बाएँ ऊपरी हाथ में चक्र तथा निचले में शंख विद्यमान है। दाईं ओर के एक हाथ में गदा के चिह्न अवशिष्ट रूप में है।

बौद्ध मूर्तियाँ: बौद्ध धर्म का जन्म भारत में ही हुआ है जबकि इसका विकास मुख्यत: उत्तरी भारत के गंगा-यमुना के दोआब क्षेत्र में हुआ है। यह मौर्य और कुषाण काल में पल्लवित हुआ। इस धर्म का प्रभाव मगध से मथुरा पहुँचा, किंतु धीरे-धीरे समस्त भारतवर्ष के कई क्षेत्रों में यह फैला, जिनमें राजस्थान के भी कुछ क्षेत्र हैं। बैराठ/विराटनगर (जयपुर) इसका प्रमुख केंद्र रहा। अशोक के दो अभिलेख यहाँ से प्राप्त हुए हैं।

4 राजस्थानी संस्कृति एवं सामाजिक जीवन
(Rajasthani Culture and Social Life)

'संस्कृति' का शाब्दिक अर्थ उत्तम या सुधरी हुई स्थिति से है। संस्कृति किसी समाज में पाए जाने वाले, उच्चतम मूल्यों और आदर्शों की वह चेतना है जो सामाजिक प्रथाओं, रीति-रिवाजों, चित्र वृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, रहन-सहन और आचरण के साथ-साथ उनके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिये जाने में अभिव्यक्त होती है। अंग्रेज़ी में संस्कृति के लिये 'कल्चर' (Culture) शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो लैटिन भाषा के 'कल्ट या कल्टस' से लिया गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- विकसित करना या परिष्कृत करना। संक्षेप में, 'संस्कृति' अपनी वृद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक परिस्थितियों को निरंतर सुधारती और उन्नत करती रहती है। ऐसी प्रत्येक जीवन पद्धति, रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, नवीन अनुसंधान और वह आविष्कार, जिससे मनुष्य के जीवन-स्तर में बदलाव होता है और वह विचारों से पहले की अपेक्षा ऊँचा उठता है तथा सभ्य बनता है, संस्कृति का ही अंग है।

राजस्थानी संस्कृति (Rajasthani culture)

राजस्थानी संस्कृति एक विशाल सागर है, जो गाँव-ढ़ाणी, किले-गढ़ी, चौपाल-पनघट, महल-झोपड़ी, खेत-खलिहान घर-घर तथा जन-जन में समाई हुई हैं। राजस्थानी संस्कृति अपनी महक के साथ रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, आचार-व्यवहार, श्रृंगार-पहनावा, नाट्य-नृत्य तथा पर्व-मेले आदि में प्रतिबिंबत होती है। यह संस्कृति (राजस्थानी संस्कृति) समष्टिगत, समन्वयात्मक एवं प्राचीन है। प्राकृतिक वैभव एवं भौगोलिक विविधता ने इसे और आकर्षक बना दिया है। वस्तुत: राजस्थानी संस्कृति लोक जीवन का प्रधिनिधित्व करने वाली संस्कृति है।

राजस्थानी संस्कृति की विशेषताएँ
(Features of Rajasthani Culture)

- 'पधारो म्हारे देस' के निमंत्रण की संवाहक राजस्थानी संस्कृति को सांस्कृतिक पर्यटन का पर्याय माना जाता है। 33 जिलों को अपने आंचल में समेटने वाली राजस्थान की धरती सांस्कृतिक परंपराओं का एक अनूठा मिश्रण प्रस्तुत करती है।
- राजस्थान की संस्कृति एवं परंपरा की प्रमुख विशेषता यह है कि राजस्थान के जनमानस ने जिस प्रकार आस्थाओं एवं मान्यताओं को फलने-फूलने दिया उसी प्रकार उन्होंने उनके अनुयायियों के प्रति भी भ्रातृ-भाव रखा। जैसे- अजमेर के ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह। यह दरगाह विश्वभर के श्रद्धालुओं की आस्था एवं विश्वास का केंद्र है, जिसमें न धर्म की पाबंदी है और न जाति की, न देश की और न संप्रदाय की। हिंदू, मुसलमान, सिक्ख और अन्य धर्मावलंबी सभी इस दरगाह पर अकीदत के फूल चढ़ाते हैं, मनौतियाँ मनाते है। आज अजमेर सूफी मत का प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय तीर्थ है। इसी प्रकार पश्चिमी राजस्थान के बाड़मेर जिले के नाकोड़ा भैरव जी तथा मेवाड़ के केसरिया जी जैनियों के साथ-साथ सनातनियों के भी पूजनीय है।
- राजस्थान के लोक देवता जिन्होंने यहाँ के सुदूर अंचलों में स्थित किसानों, जनजातियों एवं आदिवासियों को सदियों से आस्था के सूत्र में बाँधे रखा। जैसे रूणेचा में चिर-समाधि में लीन रामदेव, जिस प्रकार हिंदुओं के रामदे है, उसी प्रकार मुस्लमानों के राम-सा पीर भी है। आज भी बाबा रामदेव उत्तर भारत के पूजनीय लोकदेवताओं में प्रमुख हैं।
- राजस्थान के मध्यकालीन संतों और उनके अनुयायियों द्वारा स्थापित मठ, मेले, रामद्वारा, समागमों तथा यात्रा के माध्यम से सांस्कृतिक एवं भावनात्मक एकता के प्रयास किये गए। इन संतों की प्रेमाभक्ति के सिद्धांतों तथा मानव कल्याण की कामना ने यहाँ के समाज में भावनात्मक एकता के आयाम के नवीन पट खोले। इन संतों द्वारा मन-मिलाने का जो प्रयास जिस सहजता से किया गया वह स्तुत्य है और यहाँ की संस्कृति की पहचान है।
- राजस्थान के लोग अपनी संस्कृति एवं परंपरा पर गर्व करते हैं। उनका दृष्टिकोण परंपरागत है। यहाँ पर सालभर मेलों एवं पर्व-त्यौहारों का तांता लगा रहता है। प्राय: इन मेलों और त्यौहारों के मूल में धर्म होता है परंतु इनमें से कई मेले एवं त्यौहार अपने आर्थिक एवं सामाजिक महत्त्व के परिचायक है। राजस्थान में तीज को त्यौहारों में पहला स्थान प्रदान किया गया है। यह त्यौहार धार्मिक पर्व होने के साथ-साथ राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक भी है।
- मनुष्य एवं पशुओं की अंतर्निभरता को दर्शाने वाले पशु मेले राजस्थान की पहचान है जैसे पुष्कर का कार्तिक मेला, परबतसर एवं नागौर के तेजाजी का मेला, जो मूलत: धार्मिक है, ये राज्य के बड़े पशु मेले माने जाते हैं।
- राजस्थान में पूरा संपदा का अटूट खजाना भी विद्यमान है। राजस्थान पर प्रागैतिहासिक शैल चित्रों की छटा है, तो कहीं हड़प्पा संस्कृति के पूर्व के प्रबल प्रमाण, तो कहीं पर प्राचीन काल में धातु प्रयोग के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। कहीं गणेश्वर का ताम्र वैभव तो कहीं प्रस्तर प्रतिमाओं का शैल्पिक प्रतिमान, कहीं शिलालेखों के रूप में पाषाणों पर उत्कीर्ण गौरवशाली इतिहास तो कहीं मृण मूर्तियाँ और मृदभांड से लेकर धातु प्रतिमाओं तक का शिल्प शास्त्र, कहीं काल की गवेषणा करते प्राचीन सिक्के तो कहीं वास्तुकला के उत्कृष्ट प्रतीक बिखरे पड़े हैं।
- राजस्थान में अभेद दुर्ग, उपासना स्थल, भव्य प्रासाद एवं जीवंत स्मारकों का संगम आदि यहाँ के कस्बों, शहरों तथा उजड़ी बस्तियों में देखने को मिलता है जैसे शेखावटी के मनोहारी विशाल प्रसाद तथा ओसियाँ, रणकपुर, देलवाड़ा (दिलवाड़ा) झालरा-पाटन के

5 राजस्थान में धार्मिक जीवन, लोक-देवता एवं प्रमुख संत
(Religious Life, Lok-Devtas and Major Saints of Rajasthan)

राजस्थान में सामाजिक-धार्मिक सुधार (Socio-Religious Reform in Rajasthan)

राजस्थान में प्राचीनकाल से ही जाति व्यवस्था व्याप्त रही, जो 18वीं सदी के अंत तक बनी रही। राजस्थान का उच्च वर्ग व अन्य समुदाय पुरातनवादी, अंधविश्वासी व रूढ़िवादी रहे हैं। वे प्राचीन समय से चली आ रही व्यवस्था में परिवर्तन के पक्ष में नहीं थे। अत: राजस्थान में इन रूढ़ियों के प्रति सुधार अत्यंत मंद गति से ही हो रहा था। 19वीं सदी की शुरुआत तक ये बुराइयाँ राजपूताना में व्याप्त थीं। इन बुराइयों में डाकण प्रथा, सती प्रथा, समाधि प्रथा, कन्या-वध, दास प्रथा, जौहर/साका, दास-दासी, त्याग प्रथा इत्यादि थीं। साथ ही बेमेल विवाह, पर्दाप्रथा, निरक्षरता, बहु-विवाह व लड़कियों के क्रय-विक्रय जैसी कुरीतियाँ भी व्याप्त थीं। राजस्थान में व्याप्त इन कुप्रथाओं हेतु धन का व्यय भी सामान्य बात थी। अत: समाज में आर्थिक संकट की स्थिति लगातार बनी रही।

राजस्थान में जब ब्रिटिश शासन प्रारंभ हुआ तब समाज में व्याप्त इन बुराइयों की ओर पदाधिकारियों का ध्यान गया। कुछ जागरूक अधिकारियों ने इन बुराइयों के विरोध में कदम उठाए जिसमें प्रमुख हैं- कैप्टन लुडलो, कर्नल सदरलैंड, कैप्टन बर्टन, कर्नल शेक्सपीयर, विल्किंस इत्यादि। इन अधिकारियों ने तत्कालीन शासकों पर दबाव बनाकर इन कुरीतियों के खिलाफ कानून बनवाने प्रारंभ किये। साथ ही समाज सुधारकों, साधु-संतों व धार्मिक व्यक्तियों के अथक प्रयासों ने इन्हें समाप्त करने में अहम भूमिका निभाई।

भारतीय महिलाओं की स्थिति सुधारने में 'अखिल भारतीय महिला परिषद' ने अपना योगदान दिया। साथ ही कॉन्ग्रेस ने सन् 1888 से प्रतिवर्ष राष्ट्रीय समाज सुधार के संबंध में अधिवेशन प्रारंभ किया। राजस्थान में कुछ कुरीतियों ने इस तरह अपनी जड़ें जमा ली थीं कि उन्हें उखाड़ने हेतु युद्ध स्तर पर प्रयास किये गए।

राजस्थान की कुरीतियाँ एवं उनका निवारण *(Malpractices of Rajasthan and their Prevention)*

जौहर/साका: यह प्रथा राजपूताने में प्राचीन काल से ही व्याप्त थी। यह सती प्रथा के समान ही थी। इस प्रथा में युद्ध में जीत की आशा खत्म हो जाने पर शत्रु से अपने शील-सतीत्व की रक्षा करने के लिये वीरांगनाएँ दुर्ग/किले में प्रज्वलित अग्निकुंड में कूदकर सामूहिक आत्मदहन कर लेती थीं। इस प्रथा से प्रेरित होकर ही राजपूत वीर युद्ध में शत्रु पर आक्रामक होकर टूट पड़ते थे। यह प्रथा परिस्थितिवश ही चल पड़ी थी। इस प्रथा को मानवीय दृष्टिकोण से ठीक नहीं माना जा सकता, परंतु तत्कालीन समाज में इसे उच्च मानवीय कृत्य माना जाता था।

सती प्रथा: यह प्रथा भी राजस्थान में प्राचीन काल से ही मुख्यत: राजपूत समाज में व्याप्त रही है। यह प्रथा इतनी पुरानी है कि पुराणों व धार्मिक ग्रंथों में भी इसका उल्लेख किया गया है। इस प्रथा में जब पति की मृत्यु हो जाती है तो उसकी पत्नी उसकी चिता के साथ ही स्वयं भी जल जाती है। इस क्रिया को 'सहगमन' भी कहा जाता था। 861 ई. में घटियाला अभिलेख में इसका उल्लेख है। प्रारंभ में स्त्रियाँ स्वेच्छा से सहगमन करती थीं किंतु युद्ध की स्थितियाँ लगातार बने रहने से यह प्रथा भी बढ़ने लगी। कुछ विद्वानों ने इसे आत्महत्या का नाम दिया।

यह प्रथा इस कदर व्याप्त हो गई थी कि किसी महिला के पति की मृत्यु होने पर उसे दबाव में आकर आत्मदाह करना ही पड़ता था। यदि वह ऐसा नहीं करती तब उसे समाज में निम्नतम दर्जा दिया जाता व बाकी का जीवन नरक समान हो जाता था।

इस प्रथा के विरोध में राजा राममोहन राय व विलियम बैंटिंक ने कदम उठाए। इसके बाद यह कम होती गई। 1843 ई. में मारवाड़ के महाराजा मानसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनकी एक रानी और चार उप-पत्नियों को सती होते देख 'कैप्टन लुडलो' व्याकुल हो उठे और उन्होंने सुखराम भट्ट की सहायता से जयपुर राज्य के सामंतों को सती प्रथा को बंद करने हेतु तैयार किया।

जयपुर में यह प्रथा 26 अप्रैल, 1846 को रीजेंसी कौंसिल की मदद से अवैध घोषित कर दी गई। इसे दंडनीय अपराध माना गया। 1847 ई. में डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, टोंक, भरतपुर, जैसलमेर, सिरोही व प्रतापगढ़ में बंद हो गई। 1848 ई. में जोधपुर व कोटा में इस प्रथा को अवैध घोषित कर दिया गया। 1860 ई. में ब्रिटिश दबाव के कारण मेवाड़ के महाराणा द्वारा इसे बंद कर दिया गया। 1987 ई. में (संभवत: पूरे राष्ट्र में अंतिम मामला) इसे राज्य सरकार द्वारा पूर्णत: अवैध घोषित करते हुए इसे बंद कर दिया गया।

कन्या-वध: राजस्थान में यह प्रथा मुख्यत: राजपूत समाज (शासक वर्गों) में व्याप्त थी। इस बुराई के पनपने के पीछे कारण ये समझे जाते हैं कि लड़की के साथ परिवार का सम्मान जुड़ा रहता है। यदि लड़की का सम्मान भंग हुआ तो परिवार का सम्मान भी भंग माना जाता था और साथ ही विवाह व दहेज़ की भी समस्या बनी रहती थी। यह प्रथा संवेदनाओं को शर्मसार करती है। संक्षेप में कहें तो कुल प्रतिष्ठा, अहम्मन्यता, निर्धनता व अंधविश्वास इत्यादि के कारण ही यह प्रथा उत्पन्न हुई।

इस कुप्रथा को मिटाने में भी ब्रिटिश अधिकारियों की अहम भूमिका रही। इन्होंने शासकों को समझाने व कन्या-वध निषेध जैसे निर्देश प्रसारित करवाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 1834 ई. में सर्वप्रथम कोटा में कन्या-वध को अवैध घोषित किया गया। 1844 ई. में जयपुर, उदयपुर और 1850 ई. तक संपूर्ण राजपूताने में इस कुप्रथा को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया।

घरेलू दास प्रथा: प्राचीन काल से करीब 19वीं सदी तक यह प्रथा राजस्थान में व्याप्त थी। यह प्रथा मुख्यत: दरोगाओं और राजपूतों में प्रचलित थी क्योंकि जब किसी लड़की का विवाह होता था तो दहेज़ में

6 राजस्थानी भाषा एवं साहित्य
(Language and Literature of Rajasthan)

राजस्थानी भाषा का उद्‌भव
(Origin of Rajasthani Language)

राजस्थानी भाषा से तात्पर्य 'राजस्थान' के भू-भाग में बोली जाने वाली जन-भाषा से है, जिसे भारत के सबसे बड़े प्रांत राजस्थान की 'मातृभाषा' कहा जाता है।

राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति गुर्जरी अपभ्रंश से मानी जाती है। उद्योतन सूरी द्वारा लिखित 'कुवलयमाला' में वर्णित देशी भाषाओं में 'मरूभाषा' को भी वर्णित किया गया है। इसी प्रकार 'पिंगल शिरोमणि ग्रंथ' (कवि कुशललाभ) तथा 'आइने अकबरी' (अबुल फज़ल) में भी 'मारवाड़ी' शब्द का प्रयोग किया गया है।

राजस्थानी भाषा के वंश वृक्ष को (डॉ. मोतीलाल मेनारिया) निम्नलिखित भागों में बाँटा गया है। राजस्थानी भाषा के विकास में आर्य भाषा महत्त्वपूर्ण है, जो भारोपीय भाषा का ही एक भाग है।

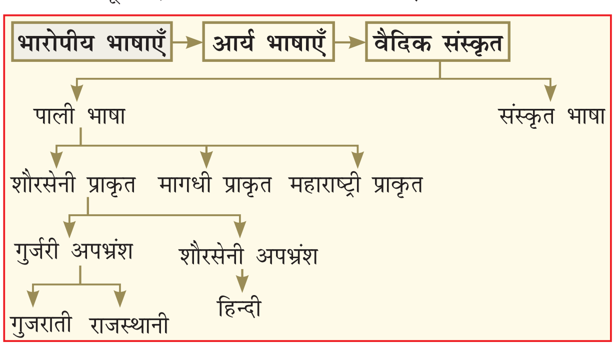

प्राचीन समय से राजस्थान की प्रधान भाषा 'मरुभाषा' रही है। राजस्थानी भाषा का उद्‌गम एवं विकास अपभ्रंश भाषा से हुआ है। अनेक भाषा विशेषज्ञों ने इसे गुजराती भाषा के निकट माना। डॉ. टेसीटोरी के अनुसार, गुर्जरी अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई है।

उद्‌गम : भारतीय आधुनिक भाषाओं की जननी 'अपभ्रंश' को माना जाता है जिसे प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की स्थिति मानते हैं।

- आभीर (उत्तर भारत की प्राचीन जाति) जिन-जिन स्थानों पर गए वहाँ की प्राकृत को अपनाकर उनमें निज स्वभाव या भाषा-संस्कारानुकूल स्वर या उच्चारण संबंधी परिवर्तन कर दिये और इन्हीं परिवर्तित या विकसित भाषाओं को 'अपभ्रंश' कहा गया।
- **गुर्जरी अपभ्रंश :** अनेक विद्वानों के मध्य राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति को लेकर अनेक मत रहे हैं। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी इसकी उत्पत्ति 'सौराष्ट्री अपभ्रंश' से तो डॉ. ग्रियर्सन 'नागर अपभ्रंश' से मानते हैं।
- श्री देवरिया, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल, डॉ. मोतीलाल मेनारिया, डॉ. माहेश्वरी आदि ने राजस्थानी भाषा को 'गुर्जरी अपभ्रंश' का बताया।
- गुर्जरत्रा क्षेत्र (गुजराती और राजस्थानी का संयुक्त क्षेत्र) पर गुर्जरों का आधिपत्य होने के कारण यहाँ की भाषा इनसे प्रभावित थी।

राजस्थानी भाषा का नामकरण
(Nomenclature of Rajasthani Language)

- राजस्थानी भाषा को मारुभूम, मरुभूम, मरुभाषा, मरुदेशीया एवं मरुवाणी जैसे नामों से जाना जाता था। वर्तमान में राजस्थानी का अर्थ राजस्थान की भाषा से लिया गया है जिसे कर्नल टॉड एवं डॉ. ग्रियर्सन इसी अर्थ में स्वीकारते हैं। 1800 ई. में सर टॉमस रॉ ने 'राजपूताना' और 1829 ई. में कर्नल जेम्स टॉड ने 'राजवाड़ा', रायथान एवं राजस्थान शब्द का प्रयोग किया। कुछ विद्वान 'डिंगल' या 'मारवाड़ी' को ही राजस्थानी भाषा मानते हैं।

डिंगल

यह राजस्थानी भाषा की ही एक शैली है। चारण साहित्य इसी भाषा में रचा गया है।

- डिंगल साहित्य अधिकांशत: दोहों, गीतों, छप्पयों में रचित है। यह मारवाड़ी का साहित्यिक रूप है।
- गीत, डिंगल व चारण साहित्य इस शैली की प्रमुख विशेषता है।
- इसका विकास गुर्जरी अपभ्रंश से हुआ है।
- वीर रस, शृंगार, ऐतिहासिक काव्य-रचना, तद्‌भव-बहुलता, अपभ्रंश की व्यंजन-द्वित्व विशेषता का पालन इस शैली में हुआ है।
- राव जैतासी रो छंद, ढोला-मारू रा दुहा, अचलदास खींची री वचनिका आदि प्रमुख ग्रंथ हैं।

राजस्थानी भाषा का विकास
(Evolution of Rajasthani Language)

राजस्थानी भाषा के विकास के चरणों को इस प्रकार समझ सकते हैं–

(i) **गुर्जरी अपभ्रंश :** इसका विकास काल 11वीं से 13वीं सदी तक रहा।
(ii) **प्राचीन राजस्थानी :** इसका विकास काल 13वीं से 16वीं सदी तक रहा।
(iii) **मध्य राजस्थानी :** इसका विकास काल 16वीं से 18वीं सदी तक रहा।
(iv) **अर्वाचीन राजस्थानी :** यह काल 18वीं सदी से वर्तमान समय तक चल रहा है।

- काल विभाजन की दृष्टि से इसे पुन: तीन भागों में विभाजित किया जाता है, जो इस प्रकार हैं–

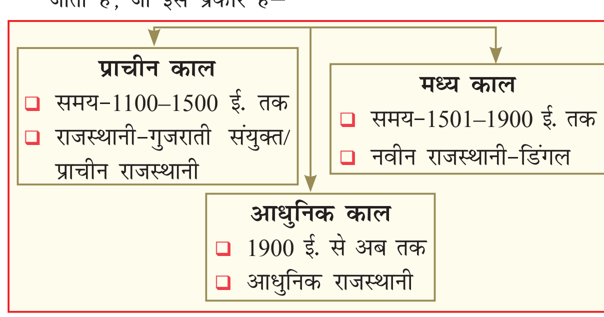

7 महत्त्वपूर्ण पर्यटन स्थल
(Important Tourist Destination)

वर्तमान में पर्यटन अर्थव्यवस्था के विकास में एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में विकसित हुआ है। यह एक ऐसा उद्योग है जिसमें अपेक्षाकृत कम पूंजी निवेश से विकास को गति प्रदान की जाती है। पर्यटन से तात्पर्य एक ऐसी यात्रा से है जो मनोरंजन या फुर्सत के क्षणों का आनंद उठाने के उद्देश्य से की जाती है। विश्व पर्यटन संगठन (World Tourism Organization) के अनुसार पर्यटक वे लोग हैं जो अपने मूल स्थान से भिन्न वातावरण वाले स्थानों की यात्रा करते हैं। यह दौरा ज़्यादा-से-ज़्यादा एक साल के लिये मनोरंजन, व्यापार एवं अन्य उद्देश्यों से किया जाता है।

कर्नल जेम्स टॉड द्वारा लिखित 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इंडिया' नामक पुस्तक में राजस्थान के पर्यटन महत्त्व का विशद वर्णन है।

राजस्थान में महत्त्वपूर्ण पर्यटन स्थल

- पर्यटन स्थलों का वर्गीकरण
- राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थल एवं सर्किट
- प्रदेश में पर्यटकों के आगमन का स्वरूप
- पर्यटन एक उद्योग के रूप में
- पर्यटन निदेशालय की गतिविधियाँ व लाभ, पर्यटन विकास की संभावनाएँ
- अर्थव्यवस्था पर पर्यटन का प्रभाव

पर्यटन स्थलों का वर्गीकरण (Classification of Tourist Destination)

राजस्थान के पर्यटन स्थलों को अग्रांकित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

प्रमुख ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक स्थल	
राजस्थान के गौरवशाली अतीत का बखान करने वाले अनेक ऐसे स्थल हैं जो ऐतिहासिक व सांस्कृतिक दृष्टि से पर्यटन के केंद्र हैं। इनमें प्रमुख हैं–	
पुरातात्त्विक स्थल	बालाथल और आहड़ (उदयपुर), कालीबंगा (हनुमानगढ़), बैराठ (जयपुर), बागौर (भीलवाड़ा), बूँदी के गुफा चित्र इत्यादि।
ऐतिहासिक दुर्ग	जूनागढ़ और लालगढ़ (बीकानेर), जालौर, नागौर, शेरगढ़ का किला, लोहागढ़ (भरतपुर), तारागढ़ (अजमेर), जैसलमेर, मेहरानगढ़ (जोधपुर), चित्तौड़गढ़, कुंभलगढ़ (राजसमंद), नाहरगढ़, आमेर, जयगढ़ (जयपुर)।
महल और हवेलियाँ	उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, भरतपुर, डीग, अलवर, बूँदी, सामोद के राजमहल और जैसलमेर की हवेलियाँ पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र हैं। शेखावाटी अंचल की अनेक हवेलियाँ व किले भी देशी-विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र रहे हैं।
धार्मिक स्थल	राजस्थान के प्रमुख धार्मिक स्थलों में कुछ इस प्रकार हैं- एकलिंग जी, नाथद्वारा, केसरिया जी, कैलादेवी, रामदेवरा, कोलायत, पुष्कर, गलता जी, जयपुर के गोविंद देवजी, खाटू श्याम जी, बिड़ला मंदिर, मोती डूँगरी गणेश मंदिर, सालासर, जैन मंदिरों में पदमपुरा, रणकपुर, नाकोड़ा, देलवाड़ा, महावीर जी का मंदिर। मुस्लिम दरगाह में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह सर्वाधिक प्रसिद्ध है।
सांस्कृतिक स्थल	राजस्थान के गौरवशाली ऐतिहासिक स्थलों के अतिरिक्त वास्तुकला व स्थापत्य कला के केंद्र भी यहाँ पर्यटकों को आकर्षित करने में पीछे नहीं हैं, जो इस प्रकार हैं– **जैसलमेर:** नथमल जी की हवेली, पटवों की हवेली, सालिम सिंह की हवेली इत्यादि। **जयपुर:** चंद्र महल, हवा महल, जंतर-मंतर, आमेर के राजाओं की छतरी एवं मंदिर इत्यादि। **जोधपुर:** जसवंत थड़ा। **अजमेर:** अढ़ाई दिन का झोपड़ा, ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह। **बूँदी:** रानी जी की बावड़ी, क्षार बाग की छतरियाँ, चौरासी खंभों की छतरी। **चित्तौड़गढ़:** कीर्ति स्तंभ, विजय स्तंभ, मीरा मंदिर, कालिका माता का मंदिर। **टोंक:** मौलाना अबुल कलाम आज़ाद अरबी-फारसी शोध संस्थान, सुनहरी (स्वर्ण) कोठी। **कोटा:** जल मंदिर के पास की छतरियाँ, मथुराधीश मंदिर। **झालरापाटन:** सूर्य मंदिर, चंद्रभागा नदी के किनारे के मंदिर। **माउंट आबू:** देलवाड़ा/दिलवाड़ा के मंदिर **रणकपुर:** जैन मंदिर **डूँडलोद:** हवेलियाँ, इमारतें।
प्राकृतिक स्थल	प्रकृति का वरदान ही रहा है कि यहाँ अनेक ऐसे सुरम्य स्थल हैं जो पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं- अजमेर की पुष्कर घाटी, भीलवाड़ा में मेनाल नदी पर मेनाल जल प्रपात, सवाई माधोपुर का रणथंभौर अभयारण्य, अलवर की काली घाटी, माउंट आबू, जैसलमेर के बालुकास्तूप, उदयपुर की जयसमंद झील, अलवर का सरिस्का अभयारण्य, भरतपुर का केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान (घना पक्षी विहार), चूरू का तालछापर अभयारण्य इत्यादि। यहाँ कई ऐसे प्राकृतिक स्थल हैं जो ऐतिहासिक और धार्मिक स्थलों के केंद्र भी हैं।

8 राजस्थान के प्रमुख व्यक्तित्व
(Major Personalities of Rajasthan)

राजस्थान के ऐतिहासिक व्यक्तित्व
(Historical Personalities of Rajasthan)

- **बप्पा रावल:** 'राज प्रशस्ति' के अनुसार बप्पा ने संवत् 734 में चितौड़ के शासक मानमोरी को परास्त कर चित्तौड़ पर कब्ज़ा जमाया (गुरु हारीत ऋषि के आशीर्वाद से)। वे मेवाड़ के राजवंश में आठवें क्रम के राजा बने। एकलिंग जी का मंदिर इन्हीं के द्वारा बनवाया गया। इन्हें पिता तुल्य सम्मान प्राप्त होने के कारण ही 'रावल' नाम दिया गया। बप्पा कालभोज की उपाधि थी।
- **राव सीहा**: जोधपुर में राठौड़ राज्य की स्थापना करने वाला प्रथम राठौड़ वंशज। चंद्रबरदाई द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' में इन्हें कन्नौजिया गहड़वाल बताया गया। नैणसी द्वारा भी जोधपुर के राठौड़ों को कन्नौज से आया बताया गया।
- **वासुदेव:** यह सांभर (प्राचीन नाम शाकम्भरी) या सपादलक्ष के चौहानों का आदिपुरुष था।
- **अजयराज:** 1133 ई. में अजमेर की स्थापना वासुदेव की साम्राज्य शक्ति को सुदृढ़ करने वाले शासक। इन्हीं का काल चौहानों के साम्राज्य-निर्माण का काल माना जाता है।
- **राणा रतनसिंह:** ये जब मेवाड़ की गद्दी पर बैठे तो 1303 ई. में खिलजी का आक्रमण चित्तौड़ पर हुआ। रतनसिंह धोखे से कैद कर लिये गए। इसी समय दो वीरों गोरा एवं बादल द्वारा रतन सिंह को कैद से मुक्त करा लिया गया।
- **महाराणा हम्मीर:** ये अपने दृढ़ निश्चय, वीरता हेतु विख्यात थे। समस्त जीवन काल में कुल सत्रह युद्ध लड़े। सोलह युद्धों में विजयश्री ने इनका वरण किया। 1301 ई. में अलाउद्दीन ने रणथंभौर पर आक्रमण किया, जो इनके जीवन काल का अंतिम व सत्रहवाँ युद्ध था।
  - हम्मीर वीर, उदार एवं शरणागत की रक्षा करने वाले शासक थे। नयनचंद्र सूरी के 'हम्मीर महाकाव्य', जोधराज के 'हम्मीर रासो', चंद्रशेखर के 'हम्मीर हठ' नामक ग्रंथों से हम्मीर के शौर्य की जानकारी मिलती है। हम्मीर के बारे में एक दोहा प्रसिद्ध है– **"सिंह, सुवन, सतपुरुष वचन, कदली फलत इकबार। तिरिया-तेल, हम्मीर हठ, चढ़े न दूजी बार"**।
  - इन्हीं के द्वारा अश्वमेध यज्ञ के समान ही 'कोटीयजन यज्ञ' का आयोजन किया गया जिसका निर्देशन इनके राजपुरोहित 'विश्वरूप' द्वारा किया गया। इनके गुरु 'राघव देव' थे।
- **पन्नाधाय:** ये सूरजमल चौहान की पत्नी तथा चित्तौड़गढ़ के पास स्थित 'माताजी की पाण्डोली' गाँव के निवासी हरचंद हांकला की पुत्री थी। ये मेवाड़ की स्वामीभक्त थी। इन्होंने अपने पुत्र का बलिदान देकर महाराणा उदयसिंह द्वितीय (रानी कर्मावती के पुत्र) को दासी पुत्र बनवीर से बचाया था। पन्नाधाय उदयसिंह द्वितीय को लेकर कुंभलनेर पहुँची। वहाँ के किलेदार आशा देवपुरा द्वारा उन्हें अपने पास रखा गया। 1537 ई. में महाराणा उदयसिंह का कुंभलगढ़ में राज्यभिषेक किया गया। स्वामीभक्त हेतु अपने पुत्र के बलिदान का यह एक अनुपम उदाहरण है।
- **गोरा एवं बादल:** ये दोनों वीर योद्धा पद्मिनी के रिश्तेदार (चाचा एवं भाई) थे। अलाउद्दीन द्वारा रतनसिंह को बंदी बना लिये जाने पर जब अलाउद्दीन ने महलों में यह खबर पहुँचाई कि पद्मिनी के मिलने पर ही राजा रतनसिंह को मुक्त किया जाएगा, तब पद्मिनी अपने साथ पालकियों में जिन महिलाओं को लेकर गई थी वो वीर राजपूत योद्धा थे। पद्मिनी की ओर से यह कहलवाया गया कि राजा से अंतिम मुलाकात के बाद वो समर्पण कर देंगी। इस अभियान के नेतृत्वकर्त्ता गोरा एवं बादल ही थे और इनके चातुर्य से राजा मुक्त करा लिये गए।
- **महाराणा लाखा:** 'लक्षासिंह' के नाम से प्रसिद्ध राणा लाखा का विवाह रणमल की बहन व मारवाड़ की राजकुमारी हंसाबाई से हुआ। वृद्धावस्था में लाखा ने विवाह किया और हंसाबाई से उत्पन्न पुत्र मोकल को मेवाड़ का राजा बनाया।
- **राव चूंडा:** ये राणा लाखा के पुत्र थे। ये 'मेवाड़ के भीष्म' नाम से प्रसिद्ध हुए। क्योंकि राणा लाखा द्वारा वृद्धावस्था में हंसाबाई से विवाह करने के पश्चात् इन्होंने प्रतिज्ञा की कि हंसाबाई से उत्पन्न पुत्र ही मेवाड़ का शासक बनेगा न कि वे स्वयं और फिर हंसाबाई से उत्पन्न पुत्र मोकल को मेवाड़ शासक बनाकर इन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।
- **महाराणा कुंभा:** ये चित्तौड़ के ऐसे शासक थे, जो वीर योद्धा होने के साथ ही विद्वान भी थे। इनके द्वारा मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी को परास्त किया गया और विजय के उपलक्ष्य में चित्तौड़ में विजयस्तंभ निर्मित करवाया गया। ये महान कवि होने के साथ ही महान रचनाकार भी थे। इनके द्वारा अनेक ग्रंथों, यथा– संगीत मीमांसा, संगीतराज, गीत गोविंद की टीका, रसिकप्रिया और स्वर प्रबंध इत्यादि की रचना की गई। राजस्थान में इन्हीं के नाम पर एक दुर्ग 'कुंभलगढ़' बना। साथ में और भी कई दुर्ग इनके द्वारा बनवाए गए।
  - महाराणा कुंभा को 'हिंदू सुरताण' ('सुरताण' मुस्लिम शासकों द्वारा दी गई उपाधि) व 'अभिनव भरताचार्य' (संगीत ग्रंथों का रचियता होने के कारण) भी कहा जाता है। इनके द्वारा निर्मित कीर्तिस्तंभ नौ मंज़िला इमारत है। यह हिंदू देवी-देवताओं की अद्वितीय मूर्तियों एवं हिंदू शैली के अलंकरण से सुशोभित है। यह 'भारतीय मूर्तिकला का विश्वकोश' कहा जाता है।
  - यह स्तंभ जैता और उसके पुत्र नापा, पोमा व पूँजा की देखरेख में बनवाया गया। कीर्तिस्तंभ प्रशस्ति के रचयिता कवि अत्रि थे। इनके द्वारा इस स्तंभ का कार्य प्रारंभ किया गया व इनके पुत्र महेश (कवि) द्वारा यह अधूरा कार्य पूर्ण किया गया।

9 प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत

(Sources of Ancient Indian History)

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्राचीन भारतीय इतिहास का विभाजन प्रागैतिहासिक काल, आद्य-ऐतिहासिक काल एवं ऐतिहासिक काल तीन भागों में किया गया है। प्रागैतिहासिक काल का इतिहास लिखते समय इतिहासकार को पूर्णतया पुरातात्त्विक साक्ष्यों पर निर्भर रहना पड़ता है। आद्य-ऐतिहासिक काल का इतिहास लिखते समय वह पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक दोनों प्रकार के साधनों का उपयोग करता है तथा ऐतिहासिक काल का इतिहास लिखते समय वह इन दोनों साधनों के अतिरिक्त विदेशी लेखकों के वर्णनों का भी प्रयोग करता है।

ऐतिहासिक स्रोतों का वर्गीकरण
(Classification of Historical Sources)

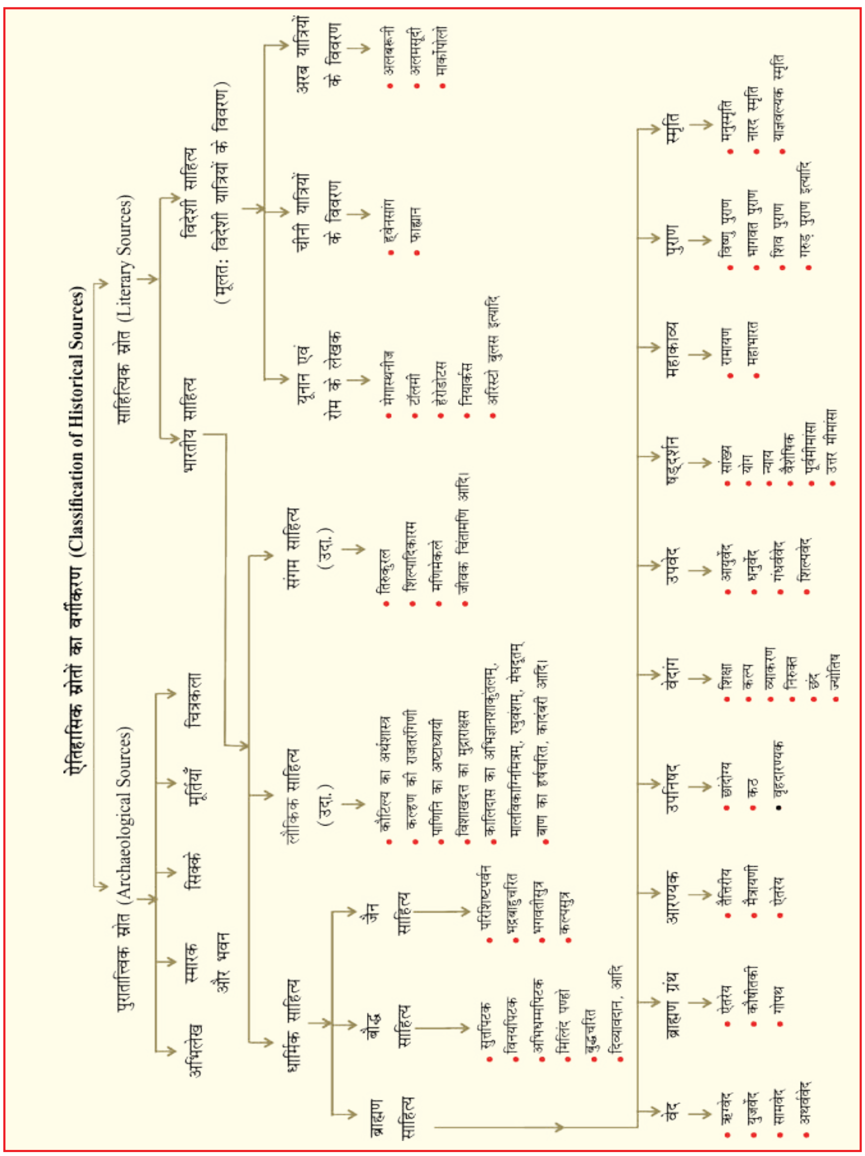

10 पाषाणयुगीन संस्कृति
(Stone Age Culture)

प्रागैतिहासिक काल के अंतर्गत ही पाषाण युगीन संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। इस युग में मानव का जीवन स्थायी नहीं था। मानव जीवन पत्थरों (पाषाण) पर अत्यधिक आश्रित था। पाषाण युगीन संस्कृति का विभाजन पत्थर के औज़ारों के स्वरूप और जलवायु में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर किया गया है।

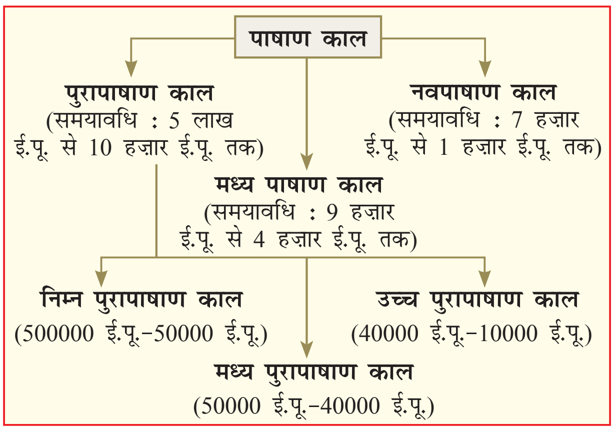

पुरापाषाण काल (Paleolithic Age)

पुरापाषाण संस्कृति का उदय अतिनूतन (Pleistocene) युग में हुआ था। इस युग में धरती बर्फ से ढकी हुई थी। पुरापाषाण काल में मानव का जीवन पूर्णतया प्राकृतिक था और माँस व कंदमूल फल पर निर्भर रहता था। इस समय का मानव अग्नि प्रयोग से अपरिचित था और कच्चा माँस खाता था। इस काल के मानव को कृषि और पशुपालन का ज्ञान नहीं था और न ही मिट्टी के बर्तनों का निर्माण करना जानता था। पुरापाषाण कालीन मानव केवल खाद्य उपभोक्ता ही था।

निम्न पुरापाषाण काल *(Lower Paleolithic Age)*

- निम्न पुरापाषाण काल में मानव द्वारा क्वार्टज़ाइट पत्थर का उपयोग उपकरण निर्माण में किया जाता था। इस काल के उपकरण भारत के प्राय: सभी भागों से मिले हैं। उपकरणों के निर्माण के आधार पर इसे दो भागों में विभाजित किया जाता है।
- उत्तरी भारत की **'सोहन संस्कृति'** जिसे **'चापर-चापिंग पेबुल संस्कृति'** भी कहा जाता है। इस संस्कृति के उपकरण सर्वप्रथम पंजाब की सोहन नदी घाटी (पाकिस्तान) से प्राप्त होने के कारण ही इसे 'सोहन संस्कृति' कहा जाता है। इस प्रकार के उपकरण में पत्थर के टुकड़े जो पेबुल (वटिकाश्म) कहलाते हैं उन पर जब एक तरफ धार बनाई जाती है तो उन्हें चापर (गंडासा) और जब दोनों ओर धार बनाई जाती है उसे चापिंग (खंडक) कहा जाता है।
- **'हैण्ड एक्स संस्कृति'** के उपकरण दक्षिण भारत में मद्रास के निकट बदमदुराई तथा अत्तिरपक्कम से प्राप्त किये गए हैं। ये उपकरण साधारण पत्थरों से कोर तथा फलक प्रणाली द्वारा निर्मित किये गए हैं। इस संस्कृति के अन्य उपकरण क्लीवर (विदारिणी) तथा स्क्रेपर (खुरचनी) आदि हैं। सर्वप्रथम राबर्ट ब्रूसफूट ने 1863 ई. में मद्रास के निकट पल्लवरम नामक स्थान से पहला हैण्डएक्स प्राप्त किया था। इसे **'मद्रास संस्कृति'** के नाम से भी जाना जाता है।
- निम्न पुरापाषाण काल के औज़ार हाथ की कुल्हाड़ी, तक्षणी, काटने का औज़ार

मध्य पुरापाषाण काल *(Middle Paleolithic Age)*

- इस काल में तापमान में भारी गिरावट हुई और इसका प्रभाव इस समय के निर्मित उपकरणों पर भी पड़ा। फलक और ब्लेड पर बने उपकरणों को मध्यपुरापाषाण काल के अंतर्गत रखा जाता है। इस काल के उपकरणों में **स्क्रेपर (खुरचनी), ब्यूरिन (तक्षणी), बेधक** आदि प्रमुख थे। किसी-किसी स्थान पर हैण्डएक्स और क्लीवर भी प्राप्त हुए हैं। फलकों की अधिकता के कारण मध्य पुरापाषाण काल को **'फलक संस्कृति'** की संज्ञा दी जाती है।
- इस काल के उपकरण निर्माण में क्वार्टज़ाइट की जगह जैस्पर, चर्ट, फ्लिंट जैसे चमकीले पत्थरों का प्रयोग होने लगा।
- मध्य पुरा पाषाण काल के उपकरण महाराष्ट्र, गुजरात, उड़ीसा, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, जम्मू-कश्मीर और उत्तर प्रदेश आदि प्रांतों के विभिन्न स्थलों से मिलते हैं।
- मध्य पुरापाषाण काल के औज़ार काटने वाले औज़ार (फलक, वेधनी, खुरचनी)

उच्च पुरापाषाण काल *(Upper Paleolithic Age)*

- पुरापाषाण काल की अंतिम अवस्था में प्रमुख उपकरण ब्लेड था, इनका निर्माण एक विशेष प्रकार के बेलनाकार कोरों को निकाल कर किया जाता था। इसके साथ ही स्क्रेपर, वेधक और छिद्रक का निर्माण भी होता था।
- उपकरण निर्माण में चर्ट, जेस्पर, फ्लिंट आदि बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग किया जाता था। पाषाण के अतिरिक्त अस्थियों के उपकरण भी प्राप्त हुए हैं।
- उच्च पुरापाषाण काल के औज़ार तक्षणी और खुरचनी

मध्य पाषाण काल (Mesolithic Age)

मध्य पाषाण काल, पुरापाषाण और नवपाषाण काल के मध्य संक्रमण काल के रूप में जाना जाता है। मध्य पाषाणकालीन उपकरण की खोज सर्वप्रथम सी.एल. कार्लाइल ने 1867 ई. में विंध्य क्षेत्र से की। इस काल के उपकरण देश के विभिन्न भागों से प्राप्त हुए हैं। उपकरणों के विस्तार

11 सिंधु घाटी सभ्यता
(Indus Valley Civilization)

सैंधव घाटी की सभ्यता का उद्भव ताम्रपाषाण काल में भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में हुआ था, जो वर्तमान में भारत, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के कुछ क्षेत्रों में अवस्थित है। इसे हड़प्पा सभ्यता (Harappan Civilization) भी कहते हैं क्योंकि सर्वप्रथम 1921 ई. में हड़प्पा नामक स्थान से ही इस संस्कृति के संबंध में जानकारी मिली थी।

उद्भव एवं विस्तार (Emergence and Expansion)

हड़प्पा सभ्यता का उद्भव
(Emergence of Harappan Civilization)

विस्तृत खोजों के बावजूद इस सभ्यता के उद्भव तथा विकास के संदर्भ में कोई ठोस जानकारी नहीं मिल पाई है।

इस सभ्यता के उद्भव के संबंध में विभिन्न इतिहासकारो ने भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं।

विदेशी उत्पत्ति से संबंधित मत

इस मत के प्रतिपादक **मार्टिमर व्हीलर** और **गार्डन चाइल्ड** जैसे इतिहासकार हैं। इसके लिये इन्होंने **सांस्कृतिक विसरण** का सिद्धांत प्रयुक्त किया। इनका मानना है कि हड़प्पा सभ्यता की उत्पत्ति पश्चिमी एशिया से 'सभ्यता के विचार के प्रवसन' के कारण हुई। हालाँकि हड़प्पा नगर-योजना मेसोपोटामिया से कहीं अधिक विकसित थी। हड़प्पा में प्रचुर मात्रा में पकी हुई ईंटों के प्रयोग के साक्ष्य मिलते हैं हड़प्पाई मुहर, लिपि, औज़ार, मृद्भांड आदि मेसोपोटामिया और मिस्र से भिन्न हैं। हड़प्पाई लिपि भाव चित्रात्मक थी तो मेसोपोटामियाई लिपि कीलनुमा।

अत: हड़प्पा सभ्यता की मौलिकता के आधार पर कहा जा सकता है कि इसका उद्भव महज़ विदेशी प्रेरणा से नहीं हुआ, हालांकि इस पर विदेशी प्रभाव को पूरी तरह से नकारा भी नहीं जा सकता है।

द्रविड़ संस्कृति से उद्भव

कुछ विद्वानों का मत है कि आर्यों के आगमन से पूर्व द्रविड़ लोग इस क्षेत्र में निवास करते थे। यहाँ से प्राप्त भूमध्यसागरीय प्रजाति के कंकालों को **'द्रविड़ों'** से जोड़ा गया है। लेकिन आर्यों का आक्रमण अनैतिहासिक सिद्ध हो जाने के कारण केवल द्रविड़ संस्कृति से हड़प्पा के जुड़ाव का मत उचित प्रतीत नहीं होता है।

आर्य संस्कृति से उद्भव

इस सभ्यता की उत्पत्ति के संबंध में एक मत यह भी दिया जाता है कि आर्य लोग ही इस सभ्यता के जनक थे। इसके पक्ष में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि दोनों सभ्यताओं का क्षेत्र सप्तसैंधव ही था। ऋग्वेद में इस क्षेत्र की तथा यहाँ की नदियों की चर्चा मिलती है। परंतु ठोस साक्ष्यों के अभाव में यह तर्क भी खंडित हो जाता है, क्योंकि आर्य लोग ग्रामीण तथा खानाबदोश जीवन जीते थे जबकि हड़प्पा सभ्यता नगरीकृत थी।

क्रमिक रूप से देशी उत्पत्ति का सिद्धांत

क्रमिक उद्भव के सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में सामान्यत: दो दृष्टिकोण प्रचलित हैं। प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार यह **'सोथी संस्कृति'** से क्रमिक विकास को दर्शाता है तो दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार यह **'ईरानी-बलूची ग्रामीण संस्कृति'** से क्रमिक विकास का परिणाम है। हड़प्पा सभ्यता **बीकानेर** क्षेत्र की सोथी संस्कृति का विकसित रूप है। इस मत के पक्ष में दोनों के मृद्भांडों में समानता दिखाई गई है। बलूचिस्तान क्षेत्र की पहाड़ियों के ग्रामीण स्थल जिन्हें नाल संस्कृति के रूप में पहचाना गया है तथा सैंधव से मकरान तट तक की कुल्ली संस्कृति को प्राक्-हड़प्पा सभ्यता के रूप में स्वीकार किया गया है।

विश्लेषण करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा सभ्यता के उद्भव की व्याख्या उन ग्रामीण संस्कृतियों के परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है जो उत्तर-पश्चिम के एक बड़े क्षेत्र में **6000 ईसा.पूर्व** एवं **4000 ईसा.पूर्व** के मध्य अस्तित्व में आईं। वस्तुत: इस काल में इस क्षेत्र में कुछ समृद्ध ग्रामीण बस्तियाँ स्थापित हुईं।

भौगोलिक विस्तार *(Geographical Expansion)*

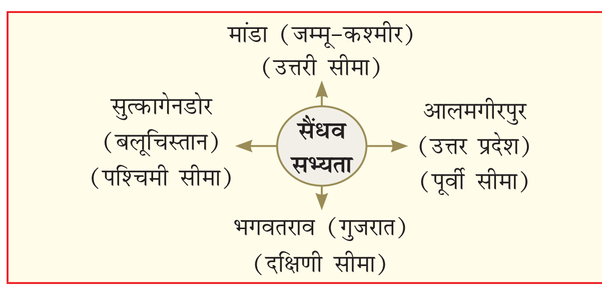

सैंधव सभ्यता का भौगोलिक विस्तार उत्तर में कश्मीर (मांडा) से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी (दैमाबाद, महाराष्ट्र) तक तथा पश्चिम में सुत्कागेनडोर से लेकर पूर्व में आलमगीरपुर (मेरठ) तक था। सैंधव सभ्यता के अंतर्गत भारत के गुजरात, राजस्थान, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुछ भाग, पाकिस्तान के सिंध, पंजाब तथा बलूचिस्तान और अफगानिस्तान के कुछ भाग शामिल हैं।

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और घग्घर नदी का क्षेत्र सैंधव सभ्यता का मुख्य क्षेत्र था। इसके क्षेत्र विस्तार से पता चलता है कि यह सभ्यता बहुत बड़े भाग पर फैली हुई थी। मिस्र तथा मेसोपोटामिया की सभ्यताओं से यह अधिक विस्तृत थी जो कि सैंधव सभ्यता की समकालीन थी। यह उत्तर से दक्षिण 1400 किमी. तक तथा पूर्व से पश्चिम 1600 किमी. तक फैली हुई थी।

12 वैदिक काल
(Vedic Age)

हड़प्पा सभ्यता के पतन के पश्चात् भारत में जो नवीन संस्कृति प्रकाश में आई, उसके विषय में हमें संपूर्ण जानकारी वेदों से मिलती है। इसलिये इस काल का नामकरण **वैदिक काल** हुआ है। चूँकि इस संस्कृति के प्रवर्तक आर्य लोग थे, इसलिये इसे कभी-कभी **आर्य सभ्यता** या **आर्य संस्कृति** का नाम भी दिया जाता है।

वैदिक काल (1500-600 ई.पू.)

- ऋग्वैदिक काल/पूर्व-वैदिक काल (1500-1000 ई.पू.)
- उत्तर-वैदिककाल (1000-600 ई.पू.)

ऋग्वैदिक काल (1500 ई.पू.–1000 ई.पू.) [Rigvedic Age (1500 B.C.–1000 B.C.)]

जानकारी के स्रोत *(Sources of Information)*

भारत में आर्यों के आरंभिक इतिहास के संबंध में जानकारी का प्रमुख स्रोत **वैदिक साहित्य** है। कुछ अन्य स्रोत भी हैं, उनमें प्रमुख स्थान पुरातत्त्व का है, जो मात्र साहित्यिक स्रोतों पर आधारित विश्लेषण की पुष्टि करने, परिष्कृत और रूपांतरित करने में सहायक हुआ है।

वैदिक साहित्य : एक दृष्टि में

ऋग्वेद – यह सबसे प्राचीन वेद है। इसमें अग्नि, इंद्र, मित्र, वरुण आदि देवताओं की स्तुतियाँ संगृहीत हैं।

सामवेद – ऋग्वैदिक श्लोकों को गाने के लिये चुनकर धुनों में बाँटा गया और इसी के पुर्नव्यवस्थित संकलन का नाम 'सामवेद' पड़ा। इसमें दी गई ऋचाएँ उपासना एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर स्पष्ट तथा लयबद्ध रूप से गाई जाती थीं।

यजुर्वेद – इसमें ऋचाओं के साथ-साथ गाते समय किये जाने वाले अनुष्ठानों का भी पद्य एवं गद्य दोनों विधाओं में वर्णन है। यह वेद यज्ञ-संबंधी अनुष्ठानों पर प्रकाश डालता है।

अथर्ववेद – यह वेद जनसामान्य की सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को जानने के लिये इस काल का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें लोक परंपराओं, धार्मिक विचार, विपत्तियों और व्याधियों के निवारण संबंधी तंत्र-मंत्र संगृहीत हैं।

वेदत्रयी – ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद को कहते हैं।

संहिता – चारों वेदों का सम्मिलित रूप।

उपनिषद् – 108 (प्रामाणिक 12)।

वेदांग – वेदों को समझने के लिये वेदांगों का अध्ययन आवश्यक था। इनकी संख्या छः है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त (भाषा विगत), छंद और ज्योतिष।

साहित्यिक स्रोत *(Literary Sources)*

ऋग्वैदिक काल की जानकारी का एकमात्र साहित्यिक स्रोत **ऋग्वेद** है। इसकी रचना अनुमानतः 1500 ई.पू. से 1000 ई.पू. के मध्य मानी जाती है। इसमें 10 मंडल तथा 1028 सूक्त हैं। इसके कुल 10 मंडलों में से 2 से 7 तक प्राचीनतम अंश हैं। प्रथम और दशम मंडल सबसे बाद में जोड़े गए मालूम होते हैं। इस वेद में 'आर्य' शब्द का उल्लेख 36 बार हुआ है। ऋग्वेद की अनेक बातें **अवेस्ता** से मिलती हैं। **अवेस्ता** ईरानी भाषा का प्राचीनतम ग्रंथ है।

मंडल	रचयिता ऋषि	मंडल	रचयिता ऋषि
प्रथम मंडल	ऋषिगण	द्वितीय मंडल	गृत्समद
तृतीय मंडल	विश्वामित्र	चतुर्थ मंडल	वामदेव
पंचम मंडल	अत्रि	षष्ठम मंडल	भारद्वाज
सप्तम मंडल	वशिष्ठ	अष्टम मंडल	कण्व एवं अंगिरस
नवम मंडल	ऋषिगण	दशम मंडल	ऋषिगण

वैदिक साहित्य के स्रोत

वेद	ब्राह्मण ग्रंथ	उपनिषद्	आरण्यक	सूक्त	अध्येता	उपवेद
ऋग्वेद	ऐतरेय, कौषितकी	ऐतरेय, कौषितकी	ऐतरेय, कौषितकी	1028	होतृ	आयुर्वेद
यजुर्वेद	तैत्तिरीय, शतपथ	तैत्तिरीय, कठ, श्वेताश्वर, ईश, वृहदारण्यक	तैत्तिरीय, वृहदारण्यक, शतपथ	–	अध्वर्यु	धनुर्वेद
सामवेद	पंचविश (इसे ताण्ड्य, ब्राह्मण भी कहते हैं)	छांदोग्य, केन	जैमनीय,छांदोग्य	1810 मंत्र	उद्गाता	गंधर्ववेद (नारद कृत)
अथर्ववेद	गोपथ	प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य	–	6000 मंत्र (लगभग)	ब्रह्म	शिल्पवेद (विश्वकर्मा द्वारा रचित)

पुरातात्त्विक स्रोत *(Archaeological Sources)*

1. **बोगाजकोई अभिलेख या मितन्नी अभिलेख (1400 ई.पू.)**
2. **कस्सी अभिलेख (1600 ई.पू.)**
3. **चित्रित धूसर मृद्भांड (Painted Grey Wares–P.G.W.)**

आर्यों का मूल निवास स्थान *(Origin of the Aryans)*

आर्य किस प्रदेश के निवासी थे, उनका मूल निवास स्थान कहाँ था भारत या भारत के बाह्य प्रदेश, इन प्रश्नों को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। यहाँ कुछ प्रमुख मतो का उल्लेख किया गया है–

13 छठी शताब्दी ई.पू. का काल (महाजनपद काल)
[Era of the Sixth Century B.C. (Mahajanpada Age)]

छठी शताब्दी ई.पू. का काल भारतीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसी शताब्दी में भारत में राज्यों के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई और मगध में साम्राज्यवाद की नींव पड़ी। नवीन धर्मों यथा- बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का उदय इसी काल में हुआ। आर्थिक दृष्टि से भी यह क्रांति का युग था, फलत: द्वितीय नगरीकरण की प्रक्रिया भी इसी काल में सामने आई।

धार्मिक आंदोलन: जैन धर्म, बौद्ध धर्म एवं अन्य धर्म (Religious Movement: Jainism, Buddhism and Others)

ईसा पूर्व छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मध्य गंगा के मैदान में अनेक धार्मिक संप्रदायों का उदय हुआ। वस्तुत: तत्कालीन सामाजिक विद्वेष के वातावरण, आर्थिक क्षेत्र में हुए परिवर्तन, धार्मिक आडंबर आदि ने सुधार आंदोलन की भूमिका तैयार की। इनमें से जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए, जिन्होंने अपने उपदेशों तथा कार्यों से समाज को प्रभावित किया।

श्रमण परंपरा भारत में प्राचीन धार्मिक आंदोलन के रूप में विद्यमान थी। इसके अंतर्गत जैन, बौद्ध, आजीवक और चार्वाक दर्शन आते हैं, इन्हें प्राय: नास्तिक दर्शन भी कहा जाता है। श्रमण शब्द 'श्रम' धातु से बना है, इसका अर्थ परिश्रम करना होता है। इस परंपरा के अंतर्गत श्रम द्वारा मोक्ष के मार्ग की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

संप्रदाय	संस्थापक
आजीवक	मक्खलिपुत्र गोशाल
घोर अक्रियावादी	पूरण कश्यप
यदृच्छावाद	आचार्य अजित केशकांबलिन
भौतिकवादी	पकुध कच्चायन
अनिश्चयवादी	संजय वेट्ठलिपुत्र

उद्भव के कारण *(Causes of Emergence)*

वैदिकोत्तर काल में समाज स्पष्टत: चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में विभाजित था तथा उनके कर्त्तव्य भी अलग-अलग निर्धारित थे। इस बात पर ज़ोर दिया जाता था कि वर्ण जन्म-मूलक है। वस्तुत: वर्ण व्यवस्था में जो जितने ऊँचे वर्ण का होता था, वह उतना ही शुद्ध और सुविधाकारी समझा जाता था।

यह स्वाभाविक ही था कि इस तरह के वर्ण-विभाजन वाले समाज में तनाव पैदा हो। क्षत्रिय लोग, जो शासक के रूप में काम करते थे, ब्राह्मणों के धर्म विषयक प्रभुत्व पर प्रबल आपत्ति करते थे। ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों के विरुद्ध क्षत्रियों का खड़ा होना नए धर्मों के उद्भव का एक प्रमुख कारण बना। जैन धर्म के प्रमुख वर्धमान महावीर और बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध दोनों क्षत्रिय वंश के थे और दोनों ने ब्राह्मणों की मान्यता को चुनौती दी।

जैन धर्म *(Jainism)*

जैन धर्मावलंबियों का विश्वास है कि उनके सबसे महान धर्म उपदेशक महावीर के पहले तेइस और आचार्य हुए हैं जो तीर्थंकर कहलाते थे, परंतु इनमें से बाईस तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। अंतिम दो तीर्थंकर पार्श्वनाथ (23वें) एवं महावीर स्वामी (24वें) की ऐतिहासिकता को जैन धर्म के ग्रंथों में प्रमाणित किया गया है। जैन धर्म के मूल संस्थापक या प्रवर्तक **प्रथम** तीर्थंकर **ऋषभदेव** माने जाते हैं।

महावीर

जैन परंपरा के अनुसार महावीर स्वामी का जन्म लगभग 599 ई.पू. (कुछ अन्य स्रोतों में 540 ई.पू.) में वज्जि संघ की राजधानी वैशाली (वर्तमान में बिहार का एक ज़िला) के निकट कुण्डग्राम में ज्ञातृक क्षत्रिय कुल में हुआ था। उनके पिता सिद्धार्थ ज्ञातृक क्षत्रियों के संघ के प्रधान थे। उनकी माता का नाम त्रिशला था जो बिंबिसार के ससुर लिच्छवि-नरेश चेटक या चेतक की बहन थी। इस प्रकार महावीर के परिवार का संबंध मगध के राजपरिवार से भी था।

वर्धमान महावीर का प्रारंभिक जीवन सुख-सुविधापूर्ण था। युवावस्था में उनका विवाह यशोदा नामक राजकन्या से हुआ, जिससे उन्हें प्रियदर्शना/प्रियदर्शनी नामक एक पुत्री की प्राप्ति भी हुई। बाद में प्रियदर्शनी का विवाह जमाली से हुआ, जो इनका प्रथम अनुयायी था। 30 वर्ष की अवस्था में अपने बड़े भाई नंदिवर्धन की आज्ञा से सांसारिक जीवन छोड़कर महावीर ने निर्ग्रंथ भिक्षु का जीवन जीना प्रारंभ किया। 12 वर्षों की कठोर तपस्या के बाद जृम्भिक ग्राम के निकट ऋजुपालिका नदी के तट पर एक साल वृक्ष के नीचे उन्हें 'कैवल्य' (ज्ञान) प्राप्त हुआ। इसी समय से महावीर जिन (विजेता), अर्हत् (पूज्य) और निर्ग्रंथ (बंधनहीन) कहलाए। कोशल, मिथिला, चंपा, मगध आदि महाजनपदों में महावीर ने 30 वर्षों तक जैन धर्म का प्रचार किया। 72 वर्ष की आयु में महावीर की मृत्यु (निर्वाण) 527 ई.पू., (कहीं-कहीं 468 ई.पू.) में पावापुरी (बिहार के राजगृह के निकट) में हुई।

जैन धर्म के सिद्धांत

जैन धर्म में मुख्यत: सांसारिक बंधनों से छुटकारा पाने के उपाय बताए गए हैं। यह सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् आचरण से प्राप्त किया जा सकता है। ये तीनों जैन धर्म के **त्रिरत्न** माने जाते हैं। जैनधर्म में आचरण पर सर्वाधिक बल दिया गया इस रूप में पंचमहाव्रत के पालन का विधान है। ये **पंचमहाव्रत** निम्नलिखित हैं-

1. अहिंसा (हिंसा नहीं करना)
2. सत्य (झूठ नहीं बोलना) करना)
3. अस्तेय (चोरी नहीं करना)
4. अपरिग्रह (संपत्ति अर्जित नहीं करना)
5. ब्रह्मचर्य (इंद्रियों को वश में करना)

14 मौर्य साम्राज्य
(Maurya Empire)

मौर्यकालीन इतिहास के स्रोत
(Sources of Mauryan History)

मौर्य साम्राज्य की जानकारी के लिये हमारे पास साहित्यिक और पुरातात्त्विक दोनों प्रकार के स्रोत उपलब्ध हैं।

साहित्यिक स्रोत *(Literary Sources)*

- **अर्थशास्त्र:** कौटिल्य द्वारा रचित यह पुस्तक मौर्यकालीन **राजनीति और शासन** के बारे में जानकारियाँ देती है। कौटिल्य (चाणक्य) चंद्रगुप्त मौर्य (मौर्य वंश का संस्थापक) का **प्रधानमंत्री** था।
- **पुराण:** मौर्य राजाओं और तात्कालिक घटनाओं के बारे में बताते हैं।
- **मुद्राराक्षस: मुद्राराक्षस** नामक नाटक जिसकी रचना **विशाखदत्त** ने की। यह पुस्तक चंद्रगुप्त के समय की सामाजिक-आर्थिक दशा पर भी प्रकाश डालती है।
- **बौद्ध एवं जैन साहित्य:** दीपवंश से अशोक द्वारा बौद्ध धर्म को श्रीलंका तक फैलाने की भूमिका के बारे में पता चलता है। अन्य बौद्ध साहित्य (महावंश, दिव्यावदान) तथा जैन साहित्य (कल्पसूत्र, परिशिष्टपर्वन) से भी मौर्य साम्राज्य के विस्तार पर प्रकाश पड़ता है।

विदेशी यात्रियों के विवरण
(Foreign Travellers Description)

- विदेशी लेखकों में स्ट्रैबो, कर्टियस, डियोडोरस, प्लिनी, एरियन, जस्टिन, प्लूटार्क, नियार्कस, ऑनेसिक्रिटस व अरिस्टोब्यूलस आदि हैं, जिन्होंने मौर्य वंश के बारे में लिखा है।
- जस्टिन आदि यूनानी विद्वानों ने चंद्रगुप्त मौर्य को 'सैंड्रोकोट्टस' कहा है।
- सर्वप्रथम विलियम जोंस ने ही 'सैंड्रोकोट्टस' की पहचान चंद्रगुप्त मौर्य के रूप में की थी।
- मेगस्थनीज़ यूनानी शासक सेल्यूकस निकेटर का राजदूत था, जो चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में आया। इसने 'इंडिका' में पाटलिपुत्र का विस्तार से वर्णन किया।

इंडिका

- मेगास्थनीज़ की 'इंडिका' मौर्य इतिहास की जानकारी उपलब्ध कराने का प्रमुख स्रोत है।
- मेगास्थनीज़ की इंडिका से हमें मौर्यों के विस्तृत प्रशासन तंत्र की जानकारी मिलती है। इस पुस्तक से मौर्य काल के प्रशासन, समाज और अर्थव्यवस्था की जानकारी मिलती है। उसके अनुसार समाज में 7 वर्ण थे।

पुरातात्त्विक स्रोत *(Archaeological Sources)*

पुरातात्त्विक स्रोतों में अभिलेखों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें अशोक के अभिलेख, इससे पूर्व चंद्रगुप्त मौर्य के अभिलेख, रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख महत्त्वपूर्ण हैं, जिनमें मौर्यकालीन राजनीतिक, प्रशासनिक, धार्मिक, सामाजिक आदि दशाओं का वर्णन मिलता है।

अशोक पूर्व के अभिलेखों में **सोहगौरा** तथा **महास्थान** का अभिलेख है जो चंद्रगुप्त मौर्य के काल से संबंधित हैं। इससे पता चलता है कि मौर्य काल में दुर्भिक्ष (अकाल) पड़ता था। अशोक के अभिलेखों को हम निम्नलिखित तरीके से वर्गीकृत कर सकते हैं–

वृहद् शिलालेख– अशोक के 14 **वृहद् शिलालेखों** से तात्पर्य अशोक के 14 आदेशों से है जो विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुए हैं। ये स्थान हैं– **कालसी (देहरादून)**, शाहबाज़गढ़ी, मानसेहरा, गिरनार, धौली, जौगढ़, सोपारा, एर्रगुड्डी (एरागुडि), सन्नाती (कर्नाटक)। इसमें धौली और जौगढ़ में दो **पृथक् शिलालेख** भी खुदे हैं। **लघु शिलालेख** गुर्जरा, मास्की, भाब्रू आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं। अशोक के **स्तंभलेखों** की संख्या 7 है जो **दिल्ली-टोपरा, दिल्ली-मेरठ** आदि जगहों से प्राप्त हुए हैं। राजकीय घोषणाओं के रूप में कुछ **लघु स्तंभलेख** साँची, कौशांबी, सारनाथ, रुम्मिनदेई से भी मिले हैं। बराबर की पहाड़ी में अशोक के गुहालेख भी मिले हैं।

अशोक के परवर्ती अभिलेखों में **रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख** से मौर्यकालीन सिंचाई व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। पहली बार इसी अभिलेख में चंद्रगुप्त के लिये **मौर्य** शब्द का प्रयोग हुआ है।

मौर्यकालीन स्थलों की खुदाई से अनेक ऐसी वस्तुएँ मिली हैं जो उस काल की झाँकी प्रस्तुत करती हैं। **कुम्हरार (आधुनिक पटना)** से प्राप्त भवनों में लकड़ी एवं पकी ईंटों के प्रयोग का पता चलता है। **दीदारगंज (पटना)** एवं **बेसनगर** से प्राप्त मूर्तियाँ मौर्यकाल की लोक-कला की जानकारी देती हैं।

मौर्य साम्राज्य का विस्तार
(Expansion of Mauryan Empire)

गंगाघाटी को केंद्र बनाकर मौर्य साम्राज्य भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश क्षेत्र में फैल गया। वस्तुत: माना जाता है कि इस साम्राज्य ने ही जंबूद्वीप की अवधारणा को मूर्त रूप दिया। वस्तुत: मौर्य साम्राज्य का आधार चंद्रगुप्त मौर्य ने तैयार किया। विशाखदत्त की कृति मुद्राराक्षस से यह जानकारी मिलती है कि अपने गुरु चाणक्य की सहायता से चंद्रगुप्त मौर्य ने सिकंदर की अनुपस्थिति से उत्पन्न अव्यवस्था का लाभ उठाते हुए उत्तर-पश्चिम में सिंधु नदी तथा व्यास नदी के बीच के भू-भाग पर कब्ज़ा कर लिया। **खरोष्ठी** लिपि में अंकित **शाहबाज़गढ़ी** और **मानसेहरा** के अभिलेखों से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

सेल्यूकस के साथ (जो मौर्यों का पश्चिमी पड़ोसी था) चंद्रगुप्त मौर्य का युद्ध हुआ तथा इस युद्ध के पश्चात् जो क्षेत्र चंद्रगुप्त मौर्य को प्राप्त हुए उनमें एरिया (हेरात), अराकोसिया (कंधार) तथा जेड्रोसिया

15 मौर्योत्तर काल

(Post-Mauran Age)

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात भरत की राजनीतिक स्थिरता कुछ समय के लिये समाप्त हो गई। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर देश के पश्चिमोत्तर भागों से विदेशी आक्रांताओं ने आक्रमण कर अनेक भागों पर अपने-अपने राज्य स्थापित कर लिया। वहीं दूसरी ओर शुग, कण्व और सातवाहन जैसे देशी राजवंशों ने भी स्वतंत्र राज्यों की स्थापना किया।

मौर्योत्तर काल
- देशी राजवंश
- प्रमुख विदेशी राजवंश

देशी राजवंश (Deshi Dynasty)

शुंग वंश *(Shunga Dynasty)*

- पुष्यमित्र शुंग ने 185 ई. पू. में मौर्य शासक बृहद्रथ की हत्या करके 'शुंग वंश' की स्थापना की।
- बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में पुष्यमित्र को 'अनार्य' कहा है। पुष्यमित्र कट्टर ब्राह्मणवादी था।
- शुंग वंश के इतिहास के बारे में जानकारी साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक, दोनों साक्ष्यों से प्राप्त होते हैं।

साहित्यिक स्रोत

- **पुराण (वायु और मत्स्य पुराण):** इससे पता चलता है कि शुंग वंश का संस्थापक पुष्यमित्र शुंग था।
- **हर्षचरित:** इसकी रचना बाणभट्ट ने की थी। इसमें अंतिम मौर्य शासक बृहद्रथ की चर्चा है। इससे पता चलता है कि पुष्यमित्र ने अंतिम मौर्य नरेश बृहद्रथ की हत्या कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया था।
- **पतंजलि का महाभाष्य:** पतंजलि पुष्यमित्र के पुरोहित थे। इस ग्रंथ में यवनों के आक्रमण की चर्चा है।
- **गार्गी संहिता:** इसमें भी यवन आक्रमण का उल्लेख है। यह एक ज्योतिष ग्रंथ है।
- **मालविकाग्निमित्रम्:** यह कालिदास का नाटक है, जिससे शुंगकालीन राजनीतिक गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त होता है।
- **दिव्यावदान:** इसमें पुष्यमित्र शुंग को अशोक के 84,000 स्तूपों को तोड़ने वाला बताया गया है।

पुरातात्त्विक स्रोत

- **अयोध्या अभिलेख:** इस अभिलेख को पुष्यमित्र शुंग के उत्तराधिकारी धनदेव ने लिखवाया था। इसमें पुष्यमित्र शुंग द्वारा कराए गए दो अश्वमेध यज्ञ की चर्चा है।
- **बेसनगर का अभिलेख:** यह यवन राजदूत हेलियोडोरस का है, जो गरुड़ स्तंभ के ऊपर खुदा है। इससे भागवत धर्म की लोकप्रियता का पता चलता है।
- **भरहुत का लेख:** इससे भी शुंग काल के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

पुष्यमित्र शुंग

- पुष्यमित्र मौर्य वंश के अंतिम शासक बृहद्रथ का सेनापति था।
- 'दिव्यावदान' से पता चलता है कि वह पुष्यधर्म का पुत्र था।
- **पतंजलि पुष्यमित्र के राजपुरोहित थे।**
- बौद्ध ग्रंथों के अनुसार पुष्यमित्र बौद्ध धर्म का उत्पीड़क था। पुष्यमित्र ने बौद्ध विहारों को नष्ट किया तथा बौद्ध भिक्षुओं की हत्या की थी।
- संभवतः पुष्यमित्र बौद्ध विरोधी था, लेकिन भरहुत स्तूप बनाने का श्रेय पुष्यमित्र शुंग को ही दिया जाता है।
- पुष्यमित्र शुंग के समय में यवन आक्रमण हुआ था। इसका वर्णन गार्गी संहिता, पतंजलि के महाभाष्य और कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' में मिलता है।
- डेमेट्रियस (दिमित्र) नामक यवन राजा पुष्यमित्र का समकालीन था।
- 'गार्गी संहिता' के युगपुराण में विवरण मिलता है कि यवन साकेत और मथुरा पर अधिकार करने के बाद पाटलिपुत्र पहुँच गए थे।

पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी

- पुष्यमित्र की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अग्निमित्र साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ।
- पुष्यमित्र के शासनकाल में ही अग्निमित्र, विदिशा का गोप्ता (उपराजा) बनाया गया था।
- राजा भागवत ने (भागभद्र) ने भागवत धर्म ग्रहण किया तथा विदिशा (बेसनगर) में गरुड़ स्तंभ की स्थापना कर भागवत विष्णु की पूजा की।
- देवभूति इस वंश का अंतिम शासक था। इसके मंत्री वसुदेव ने इसकी हत्या कर एक नए वंश (कण्व वंश) की स्थापना की।

शुंगकालीन कला

- विदिशा का गरुड़ स्तंभ;
- भाजा का चैत्य एवं विहार;
- अजंता का नवाँ चैत्य मंदिर;
- नासिक तथा कार्ले के चैत्य;
- मथुरा की अनेक यक्ष-यक्षणियों की मूर्तियाँ।

शुंग कला के विषय धार्मिक जीवन की अपेक्षा लौकिक जीवन से अधिक संबंधित हैं।

नोट: शुंग काल में विदिशा का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व सर्वाधिक हो गया था। शुंग काल में ही संस्कृत भाषा एवं हिंदू धर्म का पुनरुत्थान हुआ। इनके उत्थान में महर्षि पतंजलि का विशेष योगदान था।
- 'मनुस्मृति' के वर्तमान स्वरूप की रचना इसी युग में हुई।
- इस काल में ही भागवत धर्म का उदय व विकास हुआ तथा वासुदेव विष्णु की उपासना प्रारंभ हुई।
- मौर्य काल में स्तूप कच्ची ईंटों और मिट्टी की सहायता से बनते थे, परंतु शुंग काल में उनके निर्माण में पाषाण का प्रयोग किया गया है।
- शुंग राजाओं का काल वैदिक अथवा ब्राह्मण धर्म का पुनर्जागरण काल माना जाता है। पुष्यमित्र शुंग ने ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान किया।

16 संगम काल
(Sangam Age)

ऐतिहासिक काल के आरंभ में दक्षिण भारत के क्रमबद्ध इतिहास के संबंध में जो कुछ जानकारी प्राप्त होती है, उसका स्रोत संगम साहित्य है। 'संगम' से तात्पर्य है– **कवियों का सम्मेलन,** जो संभवत: किसी सामंत या राजा के आश्रय में आयोजित होता था। ज्ञात स्रोतों के अनुसार, **पांड्य शासकों** के अधीन तमिल क्षेत्र में **तीन संगमों** का आयोजन किया गया–

- **प्रथम संगम मदुरा** नामक स्थान पर आयोजित हुआ, जिसकी अध्यक्षता **अगस्त्य ऋषि** ने की थी। अगस्त्य ऋषि को ही **दक्षिण भारत** में **आर्य संस्कृति के प्रसार** का श्रेय दिया जाता है। इस संगम के सदस्यों की संख्या 549 थी। इन्हें 89 पांड्य शासकों का संरक्षण मिला। प्रथम संगम की कोई रचना उपलब्ध नहीं है। यह संगम सबसे अधिक दिनों तक चला।
- **द्वितीय संगम** का आयोजन **कपाटपुरम्** नामक स्थान पर हुआ था, जिसके अध्यक्ष प्रारंभ में **अगस्त्य ऋषि** थे, परंतु बाद में उनका स्थान उनके शिष्य **तोलकाप्पियर** ने ले लिया। इस संगम में कुल 49 सदस्य थे। इसे 59 पांड्य शासकों का संरक्षण मिला। इसमें भी अनेक ग्रंथों की रचना हुई, किंतु तोलकाप्पियर द्वारा रचित **तोलकाप्पियम** को छोड़कर शेष सारी रचनाएँ नष्ट हो गईं।
- **तृतीय संगम का** आयोजन **उत्तरी मदुरा** में हुआ। इसकी **अध्यक्षता नक्कीरर** ने की थी। ईसा की आठवीं सदी में लिखी गई संगम की तमिल टीकाओं में कहा गया है कि तीनों संगम 9,949 वर्षों तक चलते रहे। इन सम्मेलनों द्वारा रचित संगम साहित्य जो उपलब्ध है, लगभग 300 ई. और 600 ई. के बीच संकलित किया गया।

राजनैतिक इतिहास (Political History)

संगम साहित्य से हमें तमिल प्रदेश के **तीनों राज्यों चोल, चेर** तथा **पांड्य** का राजनीतिक विवरण मिलता है। उत्तर-पूर्व में चोल, दक्षिण-पश्चिम में चेर तथा दक्षिण-पूर्व और सुदूर दक्षिण में पांड्यों का राज्य स्थित था।

चोल राज्य *(Chola Dynasty)*

संगमकालीन तीन प्रधान राज्यों में सर्वप्रथम चोलों का अभ्युदय हुआ। इनका क्षेत्र पेन्नार और वेल्लार नदियों के मध्य स्थित था। इस वंश का राजचिह्न **बाघ** था। चोलों की प्रारंभिक राजधानी **उत्तरी मनलूर** थी, लेकिन ऐतिहासिक युग में उरैयूर राजधानी हो गई। कालांतर में **तंजावुर** भी राजधानी बनी। चोल राज्य मध्यकाल के आरंभ में चोलमंडलम् (कोरोमंडल) कहलाता था। संगमकालीन चोल शासकों में **करिकाल** सबसे महत्त्वपूर्ण शासक था। करिकाल ने अपने समकालीन चेर तथा पांड्य राजाओं को परास्त किया तथा कावेरी नदी घाटी में अपनी स्थिति सुदृढ़ की। कुछ अनुश्रुतियों के अनुसार करिकाल ने श्रीलंका पर भी विजय प्राप्त की। उसने पुहार या **कावेरीपत्तनम्** की स्थापना की और अपनी राजधानी उरैयूर से कावेरीपत्तनम् में स्थानांतरित की। उसने कावेरी नदी के किनारे बांध बनवाया। करिकाल के पश्चात् चोलों की शक्ति निर्बल पड़ने लगी। संगमकालीन चोल शासकों ने तीसरी-चौथी शताब्दी तक शासन किया। नौवीं शताब्दी के मध्य पुन: चोल सत्ता का उत्थान **विजयालय** के नेतृत्व में हुआ।

चेर राज्य *(Chera Dynasty)*

चेर या केरल देश पांड्य क्षेत्र के पश्चिम और उत्तर में था। इसमें आधुनिक केरल राज्य का और तमिलनाडु का भाग सम्मिलित था। प्रथम चेर शासक **उदियनजेरल** था। इसका काल लगभग 130 ई. माना जाता है। इसके बाद नेदुनजेरल उत्तराधिकारी बना, जिसकी राजधानी **मरंदै** थी। इसके द्वारा हिमालय तक विजय करने की बात कही गई है। इसकी उपाधि **अधिराज** थी। **शेनगुट्टवन** या **धर्मपरायण कुट्टवन** चेर वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक था, जिसका गुणगान कवि **परणर** ने भी किया है। इस शासक को **लाल** या **भला चेर** भी कहते हैं। इसके काल में विशेष घटना **पत्तिनी** (पत्नी) पूजा का प्रारंभ होना है। इसे **कण्णगी पूजा** भी कहा गया है। बलिपुरम् के युद्ध में इसने 9 चोल शासकों को पराजित किया तथा कदंबों का विनाश किया। इसके बाद ही इसने **कदलपिरक्कोत्तिय** अर्थात् **समुद्र को पीछे हटाने वाला** की उपाधि धारण की।

इस वंश के अंतिम राजा **सेईयै** को उसके समकालीन पांड्य राजा **नेडुंजेलियन** ने युद्ध में हराकर चेर राज्य का अस्तित्व समाप्त कर दिया।

पांड्य राज्य *(Pandya Dynasty)*

मेगास्थनीज को पांड्यों के विषय में जानकारी थी। उसने कहा था कि पांड्य राज्य मोती के लिये प्रसिद्ध है। पांड्य राज्य भारतीय प्रायद्वीप के सुदूर दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी भाग में था इसमें आधुनिक मदुरै तथा तिन्नेवल्ली जिले और त्रावणनकोर का कुछ भाग भी शामिल था। इसकी राजधानी **मदुरा** थी। **नेडियोन** इस वंश का प्रथम शासक था। **नेडुंजेलियन** इस वंश का प्रसिद्ध शासक था। **तलैयालंगानम्** का युद्ध (लगभग 290 ई.) जीतने के कारण यह बहुत प्रसिद्ध हुआ। इस युद्ध में चोल और चेर शासकों को हराने के साथ ही उसने चेर शासक शेय (हाथी की आँख वाला) को बंदी भी बनाया था। 'मदुरै काँची' नामक रचना, जो मदुरा और पांड्यों से संबंधित थी, में नेडुंजेलियन को योग्य शासक बताया गया है। वह कवियों और विद्वानों का संरक्षक भी था। **नक्कीरर** और **मामुंडिमरुदन** जैसे कवि इसके आश्रित थे। इसने वैदिक धर्म को प्रोत्साहन दिया और बहुत से यज्ञ किये। राजधानी 'मदुरा' उसके शासनकाल में सांस्कृतिक और व्यापारिक क्रियाकलापों के लिये प्रसिद्ध थी। संगम साहित्य से प्रकट होता है कि यह एक समृद्ध राज्य था। पांड्य राजाओं को रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार से लाभ होता था और उन्होंने **रोमन सम्राट** के दरबार में **राजदूत** भी भेजे थे।

17 गुप्त साम्राज्य
(Gupta Empire)

चौथी सदी ई. के प्रारंभ में भारत में कोई बड़ा संगठित राज्य अस्तित्व में नहीं था। यद्यपि कुषाण एवं शक शासकों का शासन चौथी सदी ई. तक जारी रहा लेकिन उनकी शक्ति काफी कमज़ोर हो गई थी और सातवाहन वंश का शासन तृतीय सदी ई. के मध्य से पहले ही समाप्त हो गया था। ऐसी राजनीतिक स्थिति में **गुप्त राजवंश का उदय** हुआ।

गुप्त राजवंश के इतिहास के प्रमुख स्रोत (Major Sources of History of Gupta Dynasty)

साहित्यिक स्रोत *(Literary Sources)*

- विशाखदत्त के नाटक 'देवीचंद्रगुप्तम्' से गुप्त शासक रामगुप्त एवं चंद्रगुप्त द्वितीय के बारे में जानकारी मिलती है।
- इसके अलावा कालिदास की रचनाएँ (ऋतुसंहार, कुमारसंभवम्, मेघदूत, मालविकाग्निमित्रम्, अभिज्ञान शाकुंतलम्) तथा शूद्रक कृत 'मृच्छकटिकम्' और वात्स्यायन कृत 'कामसूत्र' से भी गुप्त काल की जानकारी मिलती है।

पुरातात्त्विक स्रोत *(Archoeological Sources)*

- पुरातात्त्विक स्रोत में अभिलेखों, सिक्कों तथा स्मारकों से गुप्त राजवंश के इतिहास का ज्ञान होता है।
- समुद्रगुप्त के '**प्रयाग प्रशस्ति अभिलेख**' से उसके बारे में जानकारी मिलती है।
- स्कंदगुप्त के 'भीतरी स्तंभलेख' से हूण आक्रमण के बारे में जानकारी मिलती है, जबकि स्कंदगुप्त के 'जूनागढ़ अभिलेख' से इस बात की जानकारी प्राप्त होती है कि उसने सुदर्शन झील का पुनर्निर्माण करवाया था।
- गुप्तकालीन राजाओं के सोने, चांदी तथा तांबे के सिक्के प्राप्त हुए हैं। इस काल में सोने के सिक्कों को 'दीनार', चांदी के सिक्कों को 'रूपक' अथवा 'रूप्यक' तथा तांबे के सिक्कों को 'माषक' कहा जाता था।
- गुप्तकालीन स्वर्ण सिक्कों का सबसे बड़ा ढेर **राजस्थान** प्रांत के **'बयाना'** से प्राप्त हुआ है।
- मंदिरों में तिगवा का विष्णु मंदिर (जबलपुर, मध्य प्रदेश), भूमरा का शिव मंदिर (सतना, मध्य प्रदेश), नचना कुठार का पार्वती मंदिर (पन्ना, मध्य प्रदेश), भीतरगाँव का मंदिर (कानपुर, उत्तर प्रदेश), देवगढ़ का दशावतार मंदिर (झाँसी, उत्तर प्रदेश) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।
- गुप्तकालीन स्मारकों, जैसे-मंदिर, मूर्तियाँ, चैत्यगृह आदि से तत्कालीन कला और स्थापत्य की जानकारी मिलती है।
- अजंता एवं बाघ की गुफाओं के कुछ चित्र भी गुप्तकालीन माने जाते हैं।

विदेशी यात्रियों के विवरण *(Foreign Traveller's Description)*

फाह्यान: यह चीनी यात्री था और चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत आया था। इसने मध्य देश का वर्णन किया है।

ह्वेनसांग: इसने कुमारगुप्त प्रथम, बुधगुप्त, नरसिंहगुप्त 'बालादित्य' आदि गुप्त शासकों का उल्लेख किया है। इसके विवरण से ही यह पता चलता है कि कुमारगुप्त ने 'नालंदा महाविहार' की स्थापना करवाई थी।

प्रमुख गुप्त शासक (Major Gupta Rulers)

गुप्त राजवंश की स्थापना 275 ई. में महाराज श्रीगुप्त द्वारा की गई थी। दो प्राप्त मुहरें जिनमें से एक के ऊपर संस्कृत में 'श्रीगुप्तस्य' अंकित है, से प्रतीत होता है कि 'श्रीगुप्त' नामक व्यक्ति ने इस वंश की स्थापना की थी।

- गुप्त वंश का संस्थापक श्रीगुप्त था, जिसने '**महाराज**' की उपाधि धारण की थी।
- इत्सिंग के विवरण के अनुसार उसने मगध में एक मंदिर का निर्माण करवाया तथा मंदिर के खर्च के लिये 24 ग्राम दान में दिये थे।
- श्रीगुप्त के बाद उसका पुत्र 'घटोत्कच' गुप्त वंश का शासक बना। इनकी अवधि भी 'महराज' थी।
- स्कंदगुप्त के सुपिया के लेख (रीवा, मध्य प्रदेश) में भी गुप्तों की वंशावली घटोत्कच के समय से ही प्रारंभ मानी जाती है।
- प्रारंभिक दोनों गुप्त शासकों की 'महाराज' उपाधि के संबंध में निश्चित रूप से कुछ निष्कर्ष निकालना कठिन है किंतु जो भी है यदि राज्य-विस्तार की दृष्टि से देखा जाए तो श्रीगुप्त और घटोत्कच दोनों छोटे राजा या सामंत प्रतीत होते हैं।

चंद्रगुप्त-प्रथम (319– 350 ई.) *[Chandragupta–I (319–350 A.D.)]*

- गुप्त वंश का पहला प्रसिद्ध शासक **चंद्रगुप्त प्रथम** हुआ। वह ऐसा **प्रथम** शासक था जिसने **महाराजाधिराज** की उपाधि धारण की तथा स्वर्ण सिक्के जारी किये।
- इसके राज्यारोहण (319–320 ई.) के साथ **गुप्त संवत्** का आरंभ माना जाता है।
- चंद्रगुप्त प्रथम ने गुप्त साम्राज्य का आरंभिक विस्तार किया, फिर अपनी स्थिति को मज़बूत करने के लिये उसने कूटनीतिक पद्धति का भी सहारा लिया।
- उसने उत्तर भारत के प्रमुख राज्य **लिच्छवि** की राजकुमारी **कुमार देवी** के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया। गुप्त संभवत: वैश्य थे इसलिये क्षत्रिय कुल में विवाह करने से उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी।
- समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति अभिलेख में समुद्रगुप्त को **लिच्छवि दौहित्र** अर्थात् लिच्छवि कन्या से उत्पन्न बताया गया है।

18 गुप्तोत्तर काल
(Post-Gupta Age)

गुप्त वंश के पतन के बाद भारतीय प्रायद्वीप के राजनीतिक इतिहास में नवीन प्रवृत्ति का आविर्भाव हुआ। इस प्रवृत्ति में विकेंद्रीकरण और क्षेत्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव था। 550 ई. के लगभग गुप्त साम्राज्य के विखंडित होने के साथ ही कई सामंतों एवं शासकों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित करते हुए नवीन राजवंशों की स्थापना की।

प्रमुख राजवंश

- वल्लभी का मैत्रक वंश
- मालवा का यशोधर्मन
- पंजाब के हूण
- मगध/मालवा के उत्तरगुप्त
- कन्नौज का मौखरि वंश
- थानेश्वर का पुष्यभूति (वर्धन) वंश

वल्लभी का मैत्रक वंश *(Maitraka Dynasty of Vallabhi)*

मैत्रक वंश का उदय गुजरात के वल्लभी में हुआ। इस वंश की स्थापना भट्टार्क नामक गुप्तकालीन सैनिक अधिकारी के द्वारा की गई। इस वंश के शासक बौद्ध धर्म में आस्था रखते थे। भट्टार्क के उत्तराधिकारियों ने सौराष्ट्र (काठियावाड़) में शक्तिशाली राज्य स्थापित किया। भट्टार्क के उत्तराधिकारियों में धरसेन, द्रोणसिंह और ध्रुवसेन प्रमुख शासक थे। इस वंश के शासकों ने अपनी **राजधानी वल्लभी** को बनाया। **ध्रुवसेन-द्वितीय** इस वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। ध्रुवसेन द्वितीय ने लगभग 629 ई. से 640-41 ई. तक शासन किया। यह हर्षवर्धन का समकालीन था। हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह ध्रुवसेन-द्वितीय से कर मैत्रकों से संबंध स्थापित किये। ध्रुवसेन के काल में वल्लभी शिक्षा तथा व्यापार-वाणिज्य का प्रमुख केंद्र था। इसी समय चीनी यात्री ह्वेनसांग ने **वल्लभी की यात्रा** की थी। ह्वेनसांग के अनुसार वह बौद्ध धर्म में विश्वास करता था। उसने हर्ष के प्रयाग और कन्नौज के धार्मिक समारोहों में भाग लिया था। ध्रुवसेन द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र धरसेन चतुर्थ शासक बना। यह मैत्रक वंश का प्रथम शासक था जिसने महाराजाधिराज, परमभट्टाक, परमेश्वर जैसी उपाधियाँ धारण की थीं। मैत्रक वंश का अंतिम शासक शिलादित्य सप्तम् था। जिसने 766 ई. तक शासन किया अरब आक्रमणकारियों ने मैत्रक राजा की हत्या कर बल्लभी को पूर्णरूप से नष्ट कर डाला।

मालवा का यशोधर्मन *(Yashodharman of Malwa)*

मालवा के यशोधर्मन का उदय छठी शताब्दी के आरंभिक काल में हुआ। यशोधर्मन की उपलब्धियों का वर्णन हमें मंदसौर के दो अभिलेखों से प्राप्त होता है। मंदसौर प्रशस्ति यशोधर्मन का चित्रण उत्तर भारत के चक्रवर्ती शासक के रूप में करती है। यशोधर्मन द्वारा हूणों की पराजय उसकी महानतम उपलब्धियों में से एक थी। यशोधर्मन का राज्य पूर्व में लौहित्य (ब्रह्मपुत्र नदी) से लेकर पश्चिम में समुद्र तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में महेंद्रपर्वत तक विस्तृत था। मंदसौर प्रशस्ति में उसे 'जनेंद्र' कहा गया।

यशोधर्मन का दूसरा नाम विष्णुवर्धन था। उसने राजाधिराज, परमेश्वर और नराधिपति की उपाधि धारण की थी। **वह शिवभक्त था।** अभिलेखों में उसके अच्छे शासन और सद्गुणों के कई उल्लेख हैं। उसकी तुलना मनु, भरत, अलर्क और मांधाता से की गई है। यशोधर्मन ने अपने शिलालेखों में अपने को औलिकरवंशी तथा सूर्यवंशी इक्ष्वाकु का वंशज कहा है। यशोधर्मन के शासन का अंत कब और कैसे हुआ तथा औलिकर वंश में और कौन-से शासक हुए, इस संबंध में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं है। संभवत: यशोधर्मन के पश्चात् दशपुर क्षेत्र पर औलिकरों की राजनीतिक सत्ता कुछ काल तक बनी रही। छठी सदी के प्रारंभ में कलचुरी शंकरगण तथा बाद में मैत्रकों का प्रभाव इस क्षेत्र पर फैलने पर औलिकरों का पतन हो गया।

पंजाब के हूण *(Hoon of Punjab)*

हूण मध्य एशिया के निवासी थे, ये खानाबदोश और बर्बर थे। कालांतर में इनकी दो शाखाएँ हो गईं। हूणों की पूर्वी शाखा ने भारत पर कई आक्रमण किये। यह शाखा इतिहास में 'एक्थलाइट' अथवा 'श्वेत हूण' के नाम से जानी जाती है। चीनी साहित्य में हूणों को 'हुंग-नू' कहा गया है। मध्य भारत के एरण नामक स्थान से प्राप्त तोरमाण के लेख से इस बात की जानकारी मिलती है कि धन्यविष्णु उसके शासनकाल में उसका सामंत था। **जैन ग्रंथ कुवलयमाला** से भी जानकारी मिलती है कि धन्यविष्णु उसके शासनकाल में उसका सामंत था। जैन ग्रंथ कुवलयमाला से जानकारी मिलती है कि उसकी राजधानी चंद्रभागा (चिनाब) नदी के तट पर स्थित पवैया में थी। आर्यमंजुश्रीमूलकल्प से ज्ञात होता है कि तोरमाण ने पवैया, साकल (स्यालकोट), एरण, मालवा आदि क्षेत्रों में सुदृढ़ रूप से स्थापित हूण सत्ता की तथा कौशांबी, काशी और मगध क्षेत्र भी उसके प्रत्यक्ष प्रभाव में आ गए थे। ह्वेनसांग भी मगध के ऊपर तोरमाण के अधिकार की पुष्टि करता है। अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि मगध नरेश बालादित्य को तोरमाण ने ही पराजित किया था और उसने हूण सत्ता स्वीकार करता था। **तोरमाण** ने अपनी मृत्यु से पूर्व अपने **पुत्र मिहिरकुल** को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था।

मिहिरकुल एक क्रूर और अत्याचारी शासक था। ह्वेनसांग के अनुसार, उसकी राजधानी शाकल थी। **ग्वालियर लेख** में उसे **महान पराक्रमी** और **पृथ्वी का स्वामी** कहा गया है। मिहिरकुल को पराजित करने का श्रेय मालवा के शासक यशोधर्मन को जाता है। मिहिरकुल शैव मतानुयायी तथा बौद्धों का शत्रु था। कल्हण के अनुसार, श्रीनगर में मिहिरकुल ने एक शिव मंदिर का निर्माण करवाया था। कल्हण ने इसकी तुलना 'विनाश के देवता' से की है। तथा जैन ग्रंथ उसे 'दुष्टों में प्रथम' मानते हैं।

19 पूर्व मध्यकालीन भारत
(Pre Medieval India)

भारतीय इतिहास में सामान्यत: 8वीं से 11वीं शताब्दी के काल को पूर्व मध्यकाल की संज्ञा दी जाती है। राजनीतिक विकेंद्रीकरण, छोटे-छोटे राज्यों का उदय एवं उनमें आपसी संघर्ष होना जहाँ इस काल की राजनीतिक स्थिति को दर्शाता है, वहीं बंद अर्थव्यवस्था, सामंती सामाजिक जीवन, धार्मिक विविधता इस काल की प्रमुख आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक विशेषता थी।

पाल, गुर्जर-प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट वंश (Pala, Gurjar–Pratihar and Rashtrakuta Dynasty)

बंगाल का पाल राजवंश *(The Pala Dynasty of Bengal)*

पाल वंश की स्थापना संभवत: 750 ई. के आस-पास बंगाल (गौड़) में हुई थी। शशांक की मृत्यु के पश्चात् लगभग एक शताब्दी तक बंगाल में अराजकता और अव्यवस्था का माहौल बना हुआ था। उस क्षेत्र में फैली अराजकता से तंग आकर वहाँ के प्रमुख लोगों ने गोपाल को शासक चुना। यह पाल राजवंश का पहला शासक बना। यह पहला राजा था, जिसका जनता के द्वारा निर्वाचन हुआ। उसने गौड़ में फिर से सुव्यवस्था स्थापित की तथा करीब दो दशकों तक शासन किया। वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था तथा उसने ओदंतपुरी महाविहार की स्थापना भी की थी। 770 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र धर्मपाल राजा बना।

धर्मपाल ने बंगाल पर 770 से 810 ई. तक शासन किया। उसने राज्य का सर्वप्रथम विस्तार किया। कुछ समय के लिये उसने कन्नौज पर अपना अधिकार स्थापित किया था तथा उसने 'उत्तरापथस्वामिन्' की उपाधि धारण की। वह बौद्ध धर्मानुयायी था किंतु वह अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णु था। बिहार और आधुनिक पूर्वी उत्तर प्रदेश पर अपना-अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिये पालों और प्रतिहारों के मध्य संघर्ष चलता रहा, यद्यपि बंगाल के साथ-साथ बिहार पर पालों का ही अधिक समय तक नियंत्रण कायम रहा।

धर्मपाल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र देवपाल अगला शासक बना। देवपाल ने 810 से 850 ई. तक शासन किया तथा इसने भी साम्राज्य विस्तार की नीति जारी रखी। उसने मुंगेर को अपनी राजधानी बनाया तथा प्रागज्योतिषपुर (असम) और उड़ीसा के कुछ हिस्सों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। संभवत: आधुनिक नेपाल के एक हिस्से पर भी पाल प्रभुत्व स्थापित हो गया तथा उसने तिब्बत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के शैलेंद्र साम्राज्य (सुमात्रा) से अपने सांस्कृतिक एवं व्यापारिक संबंध बनाए रखे। सुमात्रा के एक शासक, बलपुत्रदेव ने उससे नालंदा में एक मठ की स्थापना की अनुमति भी प्राप्त की। अरब यात्री सुलेमान ने देवपाल की शक्ति का वर्णन एवं साम्राज्य विस्तार की जानकारी दी है। देवपाल की मृत्यु के बाद पालवंश का पतन शुरू हो गया। उसके उत्तराधिकारी नारायण पाल को प्रतिहार शासक मिहिरभोज तथा महेंद्रपाल के हाथों पराजय का सामना करना पड़ा तथा उसने, उनके हाथों मगध का क्षेत्र भी खो दिया। उसके उत्तराधिकारी राज्यपाल ने राष्ट्रकूटों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करके खोए हुए क्षेत्र को पुन: प्राप्त किया।

पाल वंश का पुनरुद्धार महिपाल (988-1038 ई.) के द्वारा हुआ किंतु चोल शासक राजेंद्र प्रथम के आक्रमण (1022-23 ई.) से राज्य को आर्थिक, सामाजिक क्षति उठानी पड़ी। महिपाल का उत्तराधिकारी नयपाल था, जिसने प्रारंभ में कलचुरियों से युद्ध किया, किंतु बाद में कलचुरी राजकुमारी से विवाह कर लिया।

नयपाल की मृत्यु के बाद अव्यवस्था फैल गई, जिसका अंत रामपाल ने किया। उसने उत्तरी बंगाल, असम, उड़ीसा पर पुन: नियंत्रण स्थापित किया किंतु सेन शासकों के हाथों पूर्वी बंगाल तथा मिथिला (कर्नाटों के हाथों) को खो दिया। संध्याकर नंदी की काव्य रचना रामचरित में श्री राम और पाल शासक रामपाल की कथाएँ एक साथ लिखी गई हैं।

पाल वंश का अंतिम शासक गोविंद पाल था। यह संभवत: बख्तियार खिलजी के आक्रमण के समय बंगाल में शासन कर रहा था, हालाँकि यह नाममात्र का शासक था तथा 12वीं शताब्दी के अंत में बंगाल का पाल राज्य, सेनवंश के अधिकार में चला गया।

पाल कला एवं संस्कृति

नोट: पाल स्थापत्य एवं चित्रकला का विस्तृत विवरण अध्याय-39 (भारतीय धरोहर) में दिया गया है

गुर्जर-प्रतिहार वंश *(Gurjara-Pratihara Dynasty)*

गुर्जर-प्रतिहारों का उद्भव गुजरात या दक्षिण-पश्चिम राजस्थान में हुआ था। गुर्जर-प्रतिहारों ने 8वीं शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी तक शासन किया। इस राजवंश का संस्थापक **हरिश्चंद्र** को माना जाता है।

नागभट्ट प्रथम (730-756 ई.)के राज्यकाल में प्रतिहारों की शक्ति और सुदृढ़ हो गई। इस राजवंश के चौथे शासक वत्सराज ने प्रतिहार राज्य को साम्राज्य में बदलने का प्रयास किया। इसी के समय त्रिपक्षीय संघर्ष प्रारंभ हुआ था, जिसमें इसने भाग लिया, लेकिन पालों तथा राष्ट्रकूटों ने उसकी महत्त्वाकांक्षा पर अंकुश लगा दिया।

प्रतिहार साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक और इस राजवंश का महानतम शासक भोज (मिहिरभोज) था। उसने 836 ई. के लगभग कन्नौज पर कब्जा कर लिया और कन्नौज प्रतिहार राज्य की राजधानी लगभग एक सदी तक बनी रही। भोज ने पूर्व की ओर विस्तार करना चाहा, किंतु पाल शासकों ने उसे परास्त कर दिया। अरब यात्रियों के विवरण से ज्ञात होता है कि प्रतिहारों के पास भारत में सबसे अच्छी अश्वारोही सेना थी। क्योंकि इस समय मध्य एशिया और अरब देश से घोड़ों का आयात भारतीय व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। पाल

20 दिल्ली सल्तनत
(Delhi Sultnate)

1206 ई. में मुहम्मद गोरी की मृत्यु के पश्चात् तुर्कों द्वारा भारत में विजित क्षेत्रों पर तुर्की शासन की स्थापना की गई। गोरी के विश्वस्त गुलाम ऐबक ने तराइन के युद्ध के पश्चात् भारत में राज्य विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अत: तुर्की सल्तनत का प्रथम शासक कुतुबुद्दीन ऐबक बना। कुतुबुद्दीन ऐबक ने जिस वंश की नींव रखी, इसे मामलूक या गुलाम वंश कहते है, क्योंकि वह मुहम्मद गोरी द्वारा खरीदा हुआ गुलाम था। गुलाम वंश के पश्चात दिल्ली सल्तनत के अंतर्गत खिलजी, तुगलक, सैयद और लोदी वंश के शासकों ने शासन किया।

गुलाम वंश (1206–1290 ई.)
(Slave Dynasty 1206-1290 AD)

कुतुबुद्दीन ऐबक (1206-1210 ई.)
[Qutubuddin Aibak (1206-1210 AD)]

गोरी की मृत्यु के बाद ऐबक को उत्तरी भारत का विजित क्षेत्र प्राप्त हुआ था। यह एक विस्तृत क्षेत्र था, जिसमें सियालकोट, लाहौर, अजमेर, झाँसी, दिल्ली, मेरठ, कोल (अलीगढ़), कन्नौज, बनारस, बिहार तथा लखनौती के क्षेत्र सम्मिलित थे। ऐबक को सिंध और मुल्तान छोड़कर मुहम्मद गोरी द्वारा विजित उत्तर भारत का संपूर्ण क्षेत्र प्राप्त हुआ था। इस विशाल क्षेत्र के साथ उसे उत्तराधिकार के रूप में अनेक चुनौतियाँ भी मिली थीं, जिन्हें अपने अल्प शासनकाल में उसने समझदारीपूर्वक निपटाया और नव गठित राज्य को युद्ध की विभीषिका से बचाए रखा।

ऐबक ने एक तरह से स्वतंत्र शासक के रूप में कार्य किया किंतु उसने न तो अपने नाम के सिक्के ढलवाए, न खुतबा पढ़वाया और न ही सुल्तान की उपाधि धारण की। उसने मात्र चार वर्ष शासन किया था। इन चार वर्षों में उसने अपना ध्यान राज्य की सुदृढ़ता एवं कानून-व्यवस्था को स्थापित करने में लगाया।

1210 ई. में लाहौर में चौगान (पोलो) खेलते हुए ऐबक की मृत्यु हो गई। यद्यपि वह एक प्रभावशाली व्यक्ति नहीं था, परंतु वह विनम्र एवं उच्च नैतिक चरित्र का स्वामी था। इसकी उदारता के कारण इसे 'लाख बख्श' (लाखों का दान करने वाला) कहा गया। अपनी प्रजा में वह 'न्यायपूर्ण राजा' के रूप में प्रसिद्ध हुआ। उसने 'किला-ए-राय-पिथौरा' के नाम से पुराने प्राचीन राजपूत दुर्ग के निकट दिल्ली के 'सात नगरों' में से पहले नगर की नींव रखी। सूफी संत ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के नाम से प्रसिद्ध ऊँची पत्थरों की मीनार **कुतुबमीनार** का निर्माण प्रारंभ करवाया था, जिसे उसकी मृत्यु के बाद इल्तुतमिश ने पूरा करवाया।

कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद उसका अयोग्य एवं अनुभवहीन पुत्र आरामशाह शासक बना। उसने लाहौर में लगभग आठ माह शासन किया। इल्तुतमिश ने उसे पराजित किया और स्वयं शासक बन गया।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (1211-1236 ई.)
[Shamsuddin Iltutmish (1211-1236 AD)]

इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत के आरंभ के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जिन विषम परिस्थितियों में उसने राज्य प्राप्त किया, उन्हें अपनी योग्यता, दूरदर्शिता और प्रतिभा के बल पर उसने समाप्त किया तथा अपने साम्राज्य को मज़बूत किया। इसीलिये उसे दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक कहा जाता है।

इल्तुतमिश, इल्बरी जनजाति का तुर्क था। वह ग्वालियर और बुलंदशहर का सूबेदार था। 1206 ई. में ऐबक ने उसे बदायूँ का सूबेदार बनाया।

ऐबक की मृत्यु के बाद दिल्ली के कुलीन तुर्कों ने आरामशाह की अयोग्यता के कारण, इल्तुतमिश को सुल्तान बनने के लिये आमंत्रित किया। इल्तुतमिश ने आरामशाह को पराजित कर तुर्क सत्ता अपने हाथ में ले ली।

प्रारंभिक तुर्की शासन में इल्तुतमिश का योगदान

शासक बनने के बाद इल्तुतमिश को उत्तराधिकार में बिखरा राज्य क्षेत्र, अव्यवस्थित शासन और अधूरे निर्माण व साम्राज्य संबंधी कार्य मिले थे। अपने 26 वर्ष के शासनकाल में इल्तुतमिश ने लगभग इन सभी समस्याओं को सुलझाया। राजत्व सिद्धांत, मुद्रा व्यवस्था, चालीसा दल का गठन करके उसने सल्तनत को एक आकार प्रदान किया।

इल्तुतमिश ने फारसी राजत्व व परंपराओं को अपनाया तथा कुलीनता पर बल दिया। संभवत: रज़िया को अपना उत्तराधिकारी घोषित करते समय भी इल्तुतमिश ईरानी परंपरा से प्रेरित था, जहाँ पिता का उत्तराधिकार पुत्र की बजाय पुत्री को मिलने के उदाहरण मिले हैं।

युद्धों और चुनौतियों से निपटने के पश्चात् अपने शासन के अंतिम वर्षों में इल्तुतमिश ने प्रशासनिक व्यवस्था को मज़बूत किया। आरंभिक प्रशासन के लिये उसने इक्तादारी प्रथा प्रारंभ की। अपने साम्राज्य को उसने इक्ताओं में विभाजित कर कुलीन एवं योग्य व्यक्तियों को इक्तादार नियुक्त किया और उन्हें सेवा के बदले में इक्ता दी जाती थी। इस व्यवस्था से सामंतवाद का अंत और केंद्रीकृत प्रशासन मज़बूत हुआ।

इल्तुतमिश ने अरबी परंपरा के आधार पर भारत में नई मुद्रा व्यवस्था लागू की। उसने तांबे का जीतल (सिक्का) और चांदी का टंका नाम से सिक्के ढलवाए, जिन पर अरबी लिपि में इल्तुतमिश का नाम अंकित था। इन सिक्कों द्वारा व्यापार सुगम हुआ, साथ-ही-साथ ये सिक्के भारत में तुर्कों की सत्ता की मज़बूती के प्रतीक थे।

इल्तुतमिश कुशल सेनानायक और योग्य प्रशासक होने के साथ कला एवं संस्कृति का प्रेमी भी था। उसने मध्य एशिया से आने वाले कलाकारों, विद्वानों एवं शिल्पियों को आश्रय दिया, जिससे दिल्ली सांस्कृतिक राजधानी के रूप में भी विकसित हुई। उसके दरबार में प्रसिद्ध

21 क्षेत्रीय शक्तियाँ : 13वीं-15वीं सदी
(Regional Powers : 13th-15th Century)

मध्यकालीन क्षेत्रीय शक्तियों का उदय (Rise of Medieval Regional Powers)

गुजरात *(Gujarat)*

पश्चिमोत्तर भारत में अवस्थित गुजरात एक महत्त्वपूर्ण प्रांत था। सुल्तान **अलाउद्दीन खिलजी** ने 1297 ई. में गुजरात के राजपूत शासक **रायकरण** को पराजित कर गुजरात को दिल्ली सल्तनत में मिला लिया था। 1391 ई. से ही सूबेदार **जफर खाँ** व्यावहारिक रूप से स्वतंत्र शासन कर रहा था और 1401 ई. में उसने औपचारिक रूप से सल्तनत की अधीनता को त्याग दिया। 1407 ई. में ज़फर खाँ ने 'सुल्तान मुज़फ्फरशाह' की उपाधि धारण कर स्वतंत्र गुजरात राज्य की स्थापना की।

- मुज़फ्फरशाह के पौत्र **अहमदशाह प्रथम** (1411-1441 ई.) को गुजरात राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। उसने ही मालवा के शासक हुशंगशाह को पराजित किया तथा साबरमती नदी के किनारे **अहमदाबाद** नगर की स्थापना कर उसे साम्राज्य की राजधानी बनाया।
- वह धार्मिक रूप से असहिष्णु शासक था। उसने **सिद्धपुर के मंदिरों** का विनाश किया, हिंदुओं पर **जज़िया (जिज़िया) कर** लगाया तथा अहमदाबाद में प्रसिद्ध **जामा मस्जिद** का निर्माण करवाया।
- **महमूद बेगड़ा** (1459-1511 ई.) गुजरात के शासकों में सबसे योग्य एवं शक्तिशाली शासक था। उसका शासनकाल भारत में **क्रोस और क्रेसेंट** के बीच युद्ध के लिये स्मरणीय है।
- उसने गुजरात के गिरनार एवं चांपानेर पहाड़ी क्षेत्र को जीत लिया था जिसके कारण उसे **बेगड़ा** की उपाधि दी गई थी। इन पहाड़ियों की तलहटी में उसने **मुस्तफाबाद** नामक नगर की स्थापना की।
- महमूद बेगड़ा के शासनकाल में अपेक्षाकृत शांति बनी रही एवं व्यापार-वाणिज्य में उन्नति हुई।
- संस्कृत का विद्वान कवि **उदयराज** उसका दरबारी कवि था। उसने सुल्तान की प्रशंसा में **महमूद चरित** नामक काव्य की रचना की।
- **बहादुरशाह** (1526-1537 ई.) यह गुजरात का अंतिम महान शासक था। इसके काल में गुजरात की शक्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। उसने 1531 ई. को तुर्की नौ-सेना की सहायता से पुर्तगाली नौ-सेना को पराजित किया।
- 1535 ई. में मुगल बादशाह **हुमायूँ** ने कुछ मुगल विद्रोहियों को शरण देने के कारण गुजरात पर आक्रमण कर दिया तथा बहादुरशाह को पराजित कर गुजरात को मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया।

अंततः 1572 ई. में अकबर ने अपने द्वितीय गुजरात अभियान द्वारा संपूर्ण राज्य को मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया।

मालवा *(Malwa)*

मालवा का राज्य नर्मदा तथा ताप्ती नदियों के मध्य अवस्थित था। इस प्रांत को सन् 1305 में अलाउद्दीन खिलजी ने दिल्ली सल्तनत में शामिल किया था, परंतु तुगलक वंश के पतन के दौरान तुगलक गवर्नर **दिलावर खाँ** ने 1401 ई. में स्वतंत्र **मालवा** साम्राज्य की स्थापना की।

मालवा आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टि से समृद्ध राज्य था। पठारी क्षेत्र होने के कारण इसका सामरिक महत्त्व भी था। यहाँ के सुल्तानों ने राजधानी **मांडू** में अनेक भव्य एवं सुंदर महलों, मस्जिदों तथा मकबरों का निर्माण करवाया था। गुजरात एवं जौनपुर मालवा के प्रमुख प्रतिद्वंद्वी राज्य थे जिनमें आपस में हमेशा प्रतिस्पर्द्धा होतीथी।

- **दिलावर खाँ** का वास्तविक नाम हुसैन था। उसने अपनी पुत्री का विवाह खानदेश के शासक फारूखी के बेटे अली शेर खिलजी के साथ किया तथा गुजरात के शासक **मुज़फ्फरशाह** के साथ मित्रतापूर्ण संबंध बनाए रखते हुए मालवा को आक्रमण से बचाया।
- मालवा का प्रसिद्ध शासक **हुशंगशाह** था। उसने धार के स्थान पर **मांडू** को साम्राज्य की राजधानी बनाया।
- हुशंगशाह एक अत्यंत लोकप्रिय शासक था, उसने बहुसंख्यक हिंदुओं के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई तथा अनेक हिंदुओं को मालवा में बसने के लिये प्रेरित किया।
- हुशंगशाह महान विद्वान और सूफी संत शेख बुहरानुद्दीन का शिष्य था। उसके संरक्षण में अनेक सूफी संत मालवा की ओर आकर्षित हुए। हुशंगशाह ने 1435 ई. में अपनी मृत्यु से पूर्व नर्मदा के किनारे **होशंगाबाद** नगर की स्थापना की।
- 1436 ई. में इसके वंश को समाप्त कर महमूद खिलजी ने मालवा में एक नए खिलजी वंश की स्थापना की। उसने **गुजरात, मेवाड़** और **बहमनी** राज्यों के साथ संघर्ष किया और मालवा को एक शक्तिशाली साम्राज्य बनाया।
- मेवाड़ के साथ राणा कुंभा से हुए युद्धों में दोनों शासकों ने विजय का दावा किया है। राणा कुंभा ने चित्तौड़ में **विजय स्तंभ** बनवाया और महमूद खिलजी ने मांडू में **सात मंज़िलों वाला स्तंभ** स्थापित किया।
- महमूद खिलजी ने जैन व्यापारियों को भी संरक्षण दिया तथा मांडू में एक **चिकित्सालय** की स्थापना की, जहाँ रोगियों का नि:शुल्क इलाज किया जाता था।
- 1531 ई. में गुजरात के शासक **बहादुरशाह** ने महमूद द्वितीय को पराजित कर मालवा को अपने राज्य में मिला लिया।

अंततः बादशाह अकबर ने 1562 ई. में अब्दुल्ला खाँ के नेतृत्व में मालवा पर विजय हेतु मुगल सेना भेजी। उस समय वहाँ का शासक बाजबहादुर (1555-62 ई.) था, जिसे परास्त कर मालवा को अंतिम रूप से मुगल साम्राज्य का हिस्सा बना लिया गया।

22

विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य
(Vijayanagara and Bahmani Empire)

विजयनगर : राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्थिति (Vijayanagara : Political and Administrative Status)

विजयनगर राज्य की स्थापना हरिहर और बुक्का नाम के दो भाइयों के द्वारा 1336 ई. में की गई थी। कहा जाता है कि **हरिहर** और **बुक्का** वारंगल के काकतीय शासक प्रताप रुद्रदेव के पारिवारिक संबंधी या सामंत थे। तुगलकों ने वारंगल पर आक्रमण कर राज्य को नष्ट कर दिया, तब दोनों भाई (हरिहर और बुक्का) **कांपिली** अथवा **अनेगोंडी** (वर्तमान कर्नाटक) राज्य में जाकर रहने लगे। एक विद्रोही को शरण देने के कारण कांपिली पर मुहम्मद तुगलक ने आक्रमण कर दिया तथा विजयोपरांत हरिहर और बुक्का को बंदी बना लिया गया। इन दोनों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये विवश किया गया। उसके उपरांत इन्हें विद्रोहियों के दमन के लिये दक्षिण भारत भेजा गया, परंतु दोनों भाइयों ने दक्षिण भारत में प्रारंभ हुई तुर्क सत्ता के विरोधी गतिविधियों में योगदान दिया तथा इस्लाम धर्म को त्यागकर श्रृंगेरी के प्रतिष्ठित गुरु **विद्यारण्य** की प्रेरणा से पुन: हिंदू धर्म स्वीकार कर तुंगभद्रा नदी के किनारे सामरिक रूप से महत्त्वपूर्ण स्थान को विजयनगर के नाम से बसाया और शासन करने लगे। 1336 ई. में हरिहर विजयनगर का शासक बना। हरिहर और बुक्का द्वारा स्थापित वंश को उनके पिता संगम के नाम पर **संगम वंश** कहा गया।

प्रमुख राजवंश *(Major Dynasty)*

राजवंश	संस्थापक	शासनकाल
संगम वंश	हरिहर एवं बुक्का	1336–1485 ई.
सालुव वंश	नरसिंह सालुव	1485–1505 ई.
तुलुव वंश	वीर नरसिंह	1505–1570 ई.
अरावीडु वंश	तिरुमल्ल	1570–1652 ई.

संगम वंश (1336-1485 ई.) *[Sangama Dynasty(1336–1485 AD)]*

हरिहर प्रथम (1336-1356 ई.)

विजयनगर साम्राज्य के संस्थापकों में से एक, हरिहर प्रथम 1336 ई. में शासक बना। उसने प्रारंभ में अनेगोंडी को अपनी राजधानी बनाया, परंतु बाद में साम्राज्य की राजधानी विजयनगर स्थानांतरित कर दी। उसने 1346 ई. में होयसल साम्राज्य को जीतकर उसे विजयनगर में शामिल कर लिया। सन् 1352–53 ई. में मदुरै पर भी विजय प्राप्त कर ली।

बुक्का प्रथम (1356-1377 ई.)

हरिहर प्रथम की मृत्यु के बाद उसका भाई बुक्का प्रथम विजयनगर का शासक बना। यद्यपि वह हरिहर प्रथम के साथ 1336 से ही **संयुक्त शासक** के रूप में शासन कर रहा था।

- इसके समय ही विजयनगर एवं बहमनी के मध्य संघर्ष की शुरुआत हुई। उसने बहमनी के सुल्तान मुहम्मदशाह प्रथम से युद्ध किया और समझौता किया।
- बुक्का प्रथम ने हिंदू धर्म की सुरक्षा का दावा किया और **वेद मार्ग प्रतिष्ठापक** की उपाधि धारण की। वेद और अन्य नवीन ग्रंथों पर टीकाएँ लिखवाईं तथा तेलगू साहित्य को प्रोत्साहन दिया।
- 1374 ई. में उसने एक दूतमंडल चीन भेजा तथा उसके साथ मित्रता के संबंध बनाए।

हरिहर द्वितीय (1377-1404 ई.)

1377 ई. में बुक्का प्रथम की मृत्यु के उपरांत हरिहर द्वितीय शासक बना। उसने अपने पूर्ववर्ती शासकों के विपरीत, **महाराजाधिराज** जैसी उपाधियाँ धारण कीं।

- हरिहर द्वितीय ने अन्य शासकों के समान अपनी विस्तार नीति जारी रखी तथा श्रीलंका तक विजय हासिल कर उससे कर वसूली की।
- रायचूर दोआब को लेकर उसका भी संघर्ष बहमनी शासक (**फिरोज़शाह बहमनी**) से हुआ। यद्यपि पहली बार वह पराजित हुआ, परंतु बाद में उसने बहमनियों से **गोवा** और **बेलगाँव** को जीत लिया।

देवराय प्रथम (1406-1422 ई.)

हरिहर द्वितीय की मृत्यु के उपरांत बुक्का द्वितीय शासक बना, परंतु बहुत ज़ल्द उसकी मृत्यु हो गई। उसके उपरांत देवराय प्रथम विजयनगर साम्राज्य का शासक बना।

- देवराय प्रथम के शासक बनते ही बहमनी राज्य से दोआब में अधिकार को लेकर युद्ध छिड़ गया, जिसमें बहमनी सुल्तान फिरोज़शाह बहमनी ने उसे पराजित कर दिया।
- युद्ध में पराजित होने के बाद उसे हूणों, मोतियों और हाथियों के रूप में दस लाख का हर्जाना देना पड़ा तथा अपनी पुत्री का विवाह फिरोज़शाह बहमनी से करना पड़ा तथा दोआब स्थित **बाँकापुर** का क्षेत्र दहेज़ के रूप में देना पड़ा।
- देवराय प्रथम ने कई जन-कल्याणकारी योजनाएँ प्रारंभ कीं। 1410 ई. में उसने तुंगभद्रा पर बांध बनवाकर उससे नहर निकलवाई। इससे राजधानी में जल की समस्या समाप्त हो गई।
- उसके शासनकाल में इतालवी यात्री **निकोलोकोंटी** ने विजयनगर की यात्रा की।

देवराय द्वितीय (1422-1446 ई.)

यह संगम वंश का सबसे महान शासक था। इसके अभिलेख संपूर्ण विजयनगर साम्राज्य में पाए गए हैं। उसे **गजबेटकर प्रौढ़ देवराय तथा इम्माडि देवराय** जैसी उपाधियों से सम्मानित किया गया।

23 भक्ति एवं सूफी आंदोलन
(Bhakti and Sufi Movement)

भक्ति आंदोलन (Bhakti Movement)

भक्ति आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत से उदित होकर उत्तर भारत में व्याप्त हुआ। इसके प्रसार में अलवार (वैष्णव संत) और नयनार (शैव) संतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। भक्ति आंदोलन का उद्देश्य हिंदू धर्म तथा समाज में सुधार लाना तथा इस्लाम एवं हिंदू धर्म में समन्वय स्थापित करना था। अपने उद्देश्यों में यह आंदोलन काफी हद तक सफल रहा।

- उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन के प्रथम प्रवर्तक रामानंद (14वीं शताब्दी) थे। जो रामानुज की पीढ़ी के प्रथम संत थे। ये राम के उपासक थे। उन्होंने सभी जातियों एवं धर्मों के लोगों को अपना शिष्य बनाकर एक तरह से जातिवाद पर कड़ा प्रहार किया। उनके शिष्यों में कबीर (जुलाहा), रैदास (चमार), सेना (नाई), धन्ना (जाट), सधना(कसाई), पीपा (राजपूत) आदि शामिल थे। पद्मावती और सुरसरी इनकी शिष्याएँ थीं। इस प्रकार लिंग-भेद को भी इन्होंने अस्वीकार कर दिया।
- भक्ति आंदोलन के संतों की मौलिक शिक्षाएँ पूर्ववत् थीं। ईश्वर की पूजा में आस्था, मूर्तिपूजा का विरोध और मोक्ष के लिये भक्ति एकमात्र रास्ता आदि।

भक्ति आंदोलन के प्रमुख संत
(Major Saints of the Bhakti Movement)

शंकराचार्य

- शंकराचार्य को भक्ति आंदोलन का प्रथम संत माना जाता है। उनका जन्म **केरल के कलाडी** में 788 ई. में हुआ था।
- इनके दर्शन का आधार वेदांत अथवा उपनिषद था। इन्होंने भारत में ब्रह्म एवं ज्ञानवाद का प्रसार किया, इसलिये इनके सिद्धांत एवं दर्शन को **अद्वैतवाद** के नाम से जाना जाता है।
- शंकराचार्य ने भारत में धर्म की एकता के लिये तथा पूरे भारत को एक सूत्र में पिरोने के लिये भारत की चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किये। सन् 820 ई. में हिमालय की तलहटी में स्थित **केदारनाथ** में मात्र 32 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गई।

शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठ

दिशा	स्थान	मठ
उत्तर	बद्रीनाथ	ज्योतिर्मठ
दक्षिण	शृंगेरी	वेदांत मठ
पूर्व	पुरी	गोवर्द्धन मठ
पश्चिम	द्वारका	शारदा मठ

- दार्शनिक संतों में सबसे अधिक प्रसिद्धि शंकराचार्य को मिली, परंतु शंकराचार्य का निर्गुण ज्ञानवादी दर्शन मन में उत्पन्न निराशा के विषाद को खत्म न कर सका और न ही सामान्य लोगों को सुग्राह्य हो सका। परिणामत: कालांतर में संतों द्वारा अद्वैतवाद की आलोचना की गई तथा वैष्णव संतों द्वारा शंकर के अद्वैतवाद के विरोध में दक्षिण में 4 नए मतों की स्थापना की गई। जो इस प्रकार हैं-
  - विशिष्टाद्वैतवाद – रामानुजाचार्य
  - द्वैतवाद – मध्वाचार्य
  - शुद्धाद्वैतवाद – विष्णुस्वामी या वल्लभाचार्य
  - द्वैताद्वैतवाद – निंबार्काचार्य

रामानुजाचार्य

- भक्ति आंदोलन के प्राचीनतम प्रचारक रामानुजाचार्य थे। इनका जन्म श्रीपेरुंबुदुर (तमिलनाडु) में हुआ था। ये वैष्णव संत थे।
- रामानुजाचार्य ने कांची या कांचीपुरम् के यादव प्रकाश की देख-रेख में शिक्षा ग्रहण की। माना जाता है कि रामानुज होयसल यादव राजकुमार विष्णुवर्द्धन के भाई को वैष्णव बनाने में सफल हुए थे।
- रामानुजाचार्य का दर्शन शंकराचार्य के अद्वैतवाद दर्शन के विरोध में प्रतिक्रिया है। उन्होंने 'विशिष्टाद्वैतवाद' का मत दिया तथा ज्ञान के स्थान पर भक्ति को महत्त्व दिया।
- रामानुजाचार्य की मान्यता थी कि व्यक्ति की आत्मा ईश्वर के साथ एकीकृत नहीं है, बल्कि आत्मा और ईश्वर का संबंध अग्नि और चिंगारी के समान है। ईश्वर पूर्णत: अमूर्त नहीं है, गुण और सौंदर्य से परिपूर्ण है। उन्होंने सगुण ईश्वर का उपदेश दिया

प्रमुख प्रवर्तक एवं उनके संप्रदाय

प्रवर्तक	संप्रदाय
शंकराचार्य	स्मृति संप्रदाय
रामानुजाचार्य	श्री संप्रदाय
मध्वाचार्य	ब्रह्म संप्रदाय
वल्लभाचार्य	रुद्र संप्रदाय
गुरु नानक	सिख संप्रदाय
दादू दयाल	दादू पंथ एवं निपख संप्रदाय
हित हरवंश	राधाबल्लभ संप्रदाय
रामानंद	रामवत संप्रदाय
श्रीचंद (गुरु नानक के पुत्र)	उदासी संप्रदाय
निरंजन	निरंजनी संप्रदाय
संत लाल दास	लाल पंथ
नामदेव	बारकरी संप्रदाय
रामदास बोध	घरकरी संप्रदाय

24 मुगल साम्राज्य
(Mugal Empire)

तैमूर ने मध्य एशिया के क्षेत्र में एक विशाल साम्राज्य का निर्माण चौदहवीं सदी में किया था, किंतु उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका साम्राज्य विघटित हो गया और उसमें अनेक छोटी-छोटी शक्तियों का उदय हुआ। तैमूर के वंशजों में बाबर भी एक था जो मुगल साम्राज्य का संस्थापक बना। बाबर का पैतृक राज्य फरगना था। मध्य एशिया के उज़बेक शासकों ने लंबे संघर्ष के बाद बाबर को फरगना से निकाल दिया। वस्तुत: शैबानी खाँ ने सर-ए-पुल के युद्ध में बाबर को पराजित कर मध्य एशिया से खदेड़ दिया था। आगे बाबर ने 1508 ई. में काबुल का राज्य जीता और कुछ समय बाद कंधार की विजय में भी सफल हुआ। इसके पश्चात् ही उसे भारत की ओर ध्यान देने का अवसर मिला।

बाबर (1526–1530 ई.) [(Babur (1526-1530 AD)]

1520–21 ई. में बाबर ने सिंधु नदी पार की तथा भिरा एवं स्यालकोट पर विजय प्राप्त की। इस तरह हिन्दुस्तान में दाखिल होने के दरवाज़े अब उसके कब्ज़े में थे। लगभग 1522 ई. के मध्य में दौलत खाँ के बेटे दिलावर खाँ के नेतृत्व में एक दूतमंडल बाबर के पास पहुँचा। उन्होंने बाबर को भारत आने के लिये आमंत्रित किया और सुझाव दिया कि उसे इब्राहीम लोदी को अपदस्थ कर देना चाहिये, क्योंकि वह अत्याचारी है और उसे अपने अमीरों का समर्थन प्राप्त नहीं है। संभवत: राणा सांगा का भी निमंत्रण बाबर के पास पहुँचा। बाबर ने 1525 ई. में पंजाब का क्षेत्र विजित करने के पश्चात् भारत अभियान प्रारंभ किया तथा अप्रैल 1526 ई. को पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी को परास्त किया जिसमें उसकी मृत्यु हो गई। पानीपत की लड़ाई को भारतीय इतिहास में निर्णायक युद्धों में गिना जाता है। इस लड़ाई से लोदी शक्ति समाप्त हो गई और दिल्ली तथा आगरा तक के क्षेत्र पर बाबर का नियंत्रण स्थापित हो गया। इस युद्ध ने बाबर की आर्थिक स्थिति को काफी सुदृढ़ किया, क्योंकि इब्राहीम लोदी ने आगरा (राजधानी) में जो दौलत जमा कर रखी थी, उस पर बाबर का कब्ज़ा हो गया था।

पानीपत की विजय के तुरंत बाद बाबर को 1527 ई. में राजपूतों के साथ खानवा की लड़ाई लड़नी पड़ी। राजपूतों द्वारा इस अभियान का मुख्य कारण बाबर का भारत में रहने का निश्चय था। राणा सांगा की धारणा थी कि बाबर भी अन्य विदेशी आक्रमणकारियों की भाँति देश को लूटकर वापस चला जाएगा। संभवत:, इसी कारण उसने इब्राहीम लोदी के विरुद्ध बाबर को सहायता देने का आश्वासन दिया था। परंतु जब बाबर ने भारत में रहने का निश्चय किया, तब उसने एक विदेशी की तुलना में स्थानीय अफगानों को अधिक ठीक समझा। इसीलिये उसने मेवात के हसन खाँ मेवाती से बाबर को भारत से बाहर निकालने के लिये सहायता मांगी, महमूद लोदी को दिल्ली का बादशाह स्वीकार किया और आलम खाँ लोदी को अपने यहाँ शरण दी। राजपूतों ने बयाना और आगरा को जीतने के उद्देश्य से आगे बढ़ना आरम्भ किया। हसन खाँ मेवाती और महमूद भी उनसे आ मिले। राणा सांगा ने मुगल क्षेत्र बयाना पर अधिकार कर लिया। बाबर ने जो उस समय आगरा में था, इस युद्ध के लिये उसने पूर्ण तैयारी की। बाबर ने 1527 ई. को इस युद्ध को 'जिहाद' (इस्लाम की रक्षा के लिये धर्मयुद्ध) घोषित कर दिया। उसके इस कार्य का उचित एवं अपेक्षित प्रभाव पड़ा। 16 मार्च, 1527 ई. को फतेहपुर सीकरी से 10 मील दूर खानवा नामक स्थान पर दोनों सेनाओं के मध्य मुकाबला हुआ। इस युद्ध में बाबर की विजय हुई। यद्यपि बाबर को खानवा की लड़ाई से कोई नया क्षेत्र प्राप्त नहीं हुआ और न कोई विशेष आर्थिक लाभ ही हुआ, फिर भी इस युद्ध का राजनीतिक परिणाम निर्णायक था। इस युद्ध के पश्चात् मुगल साम्राज्य की स्थापना पूरी तरह से हो गई।

खानवा के युद्ध के बाद बाबर ने अब अफगान और राजपूतों के बचे प्रतिरोध के दमन का निश्चय किया। 1528 ई. में बाबर ने चंदेरी के दुर्ग पर अधिकार किया और यहाँ का शासक मेदिनीराय युद्ध में मारा गया तथा हज़ारों की संख्या में राजपूतों का कत्ल किया गया।

बाबर ने 1529 ई. में पूर्वी भारत की ओर प्रस्थान किया और 6 मई, 1529 में नूहानी अफगान शासकों को घाघरा के तट पर पराजित किया, जिन्होंने लोदी वंश के विघटन के बाद बिहार में स्वतंत्र सत्ता ग्रहण कर ली थी। पानीपत की हार के पश्चात् इब्राहीम लोदी के भाई महमूद लोदी को नूहानियों ने शरण दी थी और उसे दिल्ली के शासक के रूप में पुनर्स्थापित करने के लिये वे प्रयत्नशील थे। बिहार का कुछ भाग जलालुद्दीन को दे दिया गया। केवल कुछ भाग बाबर ने अपने अधीन रखा। शेर खाँ सूर को माफ कर दिया गया और जलालुद्दीन ने उसे अपना मंत्री बनाना स्वीकार कर लिया। बंगाल के शासक नुसरत शाह ने बाबर से संधि कर ली जिसके द्वारा दोनों ने एक-दूसरे की संप्रभुता तथा सीमाओं को स्वीकार कर लिया और नुसरतशाह ने यह आश्वासन दिया कि वह बाबर के शत्रुओं को अपने यहाँ शरण नहीं देगा।

घाघरा का युद्ध बाबर का अंतिम युद्ध था। तीन बड़े युद्धों को जीतकर बाबर ने भारत में सिंधु नदी से लेकर बिहार तक और हिमालय से लेकर ग्वालियर तथा चंदेरी तक अपना राज्य स्थापित कर लिया था। उत्तर-भारत में मुगल-शक्ति को चुनौती देने वाली कोई शक्ति नहीं रह गई थी। इस तरह भारत में मुगल सत्ता स्थापित हुई। 26 दिसंबर, 1530 को बाबर की मृत्यु हो गई। अपनी मृत्यु से पहले ही उसने हुमायूँ को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। उसके शव को पहले आगरा के आरामबाग में परंतु बाद में काबुल में उसी के द्वारा चुने गए स्थान पर दफना दिया गया।

हुमायूँ (1530 – 1556 ई.) [Humayun (1530-1556 AD)]

बाबर के चार पुत्रों में हुमायूँ का जन्म 1508 ई. को काबुल में हुआ था। बाबर ने अपना उत्तराधिकारी हुमायूँ को घोषित किया था। अत:

25 मराठा साम्राज्य
(Maratha Empire)

मुगल साम्राज्य के पतन के दौरान ही मराठा शक्ति का उदय हुआ। मराठों के उदय में सर्वाधिक योगदान क्षेत्र-विशेष की भौगोलिक परिस्थितियों का था। मराठों का मूल निवास-क्षेत्र मराठवाड़ा तीन भागों में विभक्त था। पहला सह्याद्रि पर्वत से दक्षिण तटवर्ती भाग, दूसरा सह्याद्रि का पर्वतीय क्षेत्र और तीसरा पूर्वी मैदान का पहाड़ी एवं जंगली क्षेत्र। सह्याद्रि के तटवर्ती क्षेत्र को कोंकण एवं पर्वतीय क्षेत्र को मावला के नाम से जाना जाता है। यहाँ कृषि कार्य कठिन था। प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण मराठों में साहस, कठोर परिश्रम, आत्मसंयम जैसे गुणों का विकास हुआ। अपनी आजीविका को चलाने के लिये मराठे लूट-पाट का सहारा लेते थे। मराठों में एकता की भावना जगाने में मराठी भाषा का सर्वाधिक योगदान रहा।

उदय के कारण (Causes of Rise)

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मराठा साम्राज्य का उदय कोई एक घटना नहीं, बल्कि यह विभिन्न कारकों का सम्मिलित प्रभाव था। उन कारकों में जहाँ मराठा क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति तथा यहाँ के भक्ति आंदोलन तथा औरंगज़ेब की नीतियों का योगदान रहा, वहीं शिवाजी के चामत्कारिक व्यक्तित्व ने भी इसके उदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

एम.जी. रानाडे ने अपनी पुस्तक **'द राइज़ ऑफ मराठा पावर'** (The rise of Maratha power) में मराठवाड़ा के ऊबड़-खाबड़ भौगोलिक क्षेत्र को मराठा साम्राज्य के उदय का प्रधान कारण माना है। इसके अन्य प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

शिवाजी (Shivaji)

छत्रपति शिवाजी महाराज या शिवाजी राजे भोंसले भारत के महान योद्धा एवं रणनीतिकार थे। 1627 ई. में शिवाजी का जन्म **शिवनेर** के किले में हुआ था। इनकी माता का नाम **जीजाबाई** और पिता **शाहजी भोंसले** थे। शिवाजी भोंसले वंश के थे। **दादाजी कोंडदेव शिवाजी** के संरक्षक थे। शिवाजी के ऊपर समर्थ गुरु रामदास का अत्यधिक प्रभाव था। शिवाजी का विवाह 1640 ई. में **'साईबाई'** के साथ हुआ था। शिवाजी ने अपना प्रथम सैन्य अभियान बीजापुर के आदिलशाही राज्य के विरुद्ध किया। सर्वप्रथम 1643 ई. में शिवाजी ने **सिंहगढ़** का किला जीता और 1647 ई. में शिवाजी ने **कोंडाना** पर विजय प्राप्त की। इस विजय के उपरांत बीजापुर के सुल्तान द्वारा शाहजी बंदी बना लिये गए थे। 1648 ई. में शिवाजी ने अपने पिता को रिहा कराने के लिये कोंडाना का किला छोड़ दिया था। मराठा सरदार चंद्रराव मोर से 1656 ई. में शिवाजी ने जावली का किला जीता था। जून 1674 ई. को उन्होंने काशी के प्रसिद्ध विद्वान गंगाभट्ट से रायगढ़ में अपना राज्याभिषेक करवाया तथा **'छत्रपति'** की उपाधि धारण की।

छत्रपति

छत्रपति मराठों द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला सम्राट के लिये एक भारतीय शाही शीर्षक था। शब्द 'छत्रपति' संस्कृत शब्द छतरा (छत या छतरी) और पति (मास्टर/मालिक/शासक) से बना है। इस प्रकार छत्रपति अपने अनुयायियों की रक्षा करता है और उनकी सफलता की कामना करता है।

शिवाजी का प्रशासन *(Administration of Shivaji)*

शिवाजी का राज्य आदर्श प्राचीन हिन्दू सिद्धांतों पर आधारित था। शिवाजी ने **'छत्रपति'** की उपाधि धारण की थी अर्थात् राज्य की संपूर्ण शक्ति एवं अधिकार उनके हाथों में था। शिवाजी ने राज्य को विभिन्न प्रांतों में विभक्त कर दिया था। प्रांतों (सूबों) को **परगनों** और **तालुकों** में विभाजित किया गया था। परगनों के अंतर्गत **तरफ** और **मौजे** आते थे। राज्य की सबसे छोटी इकाई **ग्राम** थी।

अष्टप्रधान

प्रशासन में शिवाजी की सहायता और परामर्श के लिये जो 8 मंत्रियों की परिषद होती थी, उसे **अष्टप्रधान** कहा जाता था। इस परिषद का प्रत्येक मंत्री अपने विभाग का प्रमुख होता था। परिषद के सभी सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार शिवाजी के पास था। ये मंत्री शिवाजी के उच्च सचिव के समान थे। मंत्रियों के निर्णय मानना शिवाजी के लिये बाध्यकारी नहीं था। शिवाजी ने किसी मंत्री के पद को आनुवंशिक नहीं बनाया।

महत्त्वपूर्ण अधिकारी

प्रत्येक मंत्री के अधीन सहयोग हेतु निम्नलिखित आठ अधिकारियों का कार्यालय होता था-

दीवान	-	सचिव
मजमुआदार	-	लेखा-परीक्षक तथा लेखाकार
फड़निस	-	उपलेखा-परीक्षक
सेबनिस या दफ्तरदार	-	कार्यालय प्रभारी
कारखानिस	-	रसद अधिकारी
चिटनिस	-	पत्राचार लिपिक
जमादार	-	खजांची
पोटनिस	-	रोकड़िया

- **पेशवा :** यह प्रधानमंत्री की तरह था। सरकारी कार्यों में राजा की मुहर के साथ इसकी भी मुहर लगती थी। यह राजा की अनुपस्थिति में प्रशासन का संचालन करता था।

26 यूरोपीय कंपनियों का भारत आगमन
(Arrival of European Companies in India)

प्राचीन काल में यूनानियों के भारत आगमन के साथ ही भारत और यूरोप के मध्य व्यापारिक संबंध स्थापित हुए। मध्यकाल में एशिया और यूरोप के बीच व्यापार अरब देशों के व्यापारियों की मध्यस्थता से होता था। 1453 ई. में **औटोमन तुर्कों** का **कुस्तुनतुनिया** पर अधिकार हो जाने के उपरांत स्थल मार्ग से व्यापार अवरुद्ध हो गया। परिणामत: वैकल्पिक मार्ग के रूप में यूरोप के व्यापारी सुरक्षित समुद्री मार्ग की तलाश करने लगे। इसी क्रम में पुर्तगाल निवासी **वास्कोडिगामा** ने **केप ऑफ गुड होप** की यात्रा करते हुए भारत के नए समुद्री मार्ग की खोज की और जल्द ही भारत का समुद्री व्यापार जो अरब व्यापारियों के हाथों में था, उसे शक्ति के बल पर पुर्तगालियों ने अपने हाथ में ले लिया। **15वीं शताब्दी** के उत्तरार्द्ध एवं **17वीं शताब्दी** के पूर्वार्द्ध के दौरान भारत में व्यापार के प्रारंभिक उद्देश्यों से प्रवेश करने वाली यूरोपीय कंपनियों ने यहाँ की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति को लगभग **350** वर्षों तक प्रभावित किया। इन विदेशी शक्तियों में **पुर्तगाली** प्रथम थे। इसके पश्चात् क्रमश: **डच, अंग्रेज़, डेनिश** तथा **फ्रांसीसी** आए।

भारत में पुर्तगालियों का आगमन (Arrival of the Portuguese in India)

सर्वप्रथम पुर्तगाली व्यापारी **वास्कोडिगामा ने** मई 1498 में भारत के पश्चिमी तट पर अवस्थित बंदरगाह **कालीकट** पहुँचकर भारत के लिये नए समुद्री मार्ग की खोज की। वास्कोडिगामा का स्वागत कालीकट के तत्कालीन शासक **जमोरिन** (यह कालीकट के शासक की उपाधि थी) द्वारा किया गया। लेकिन तत्कालीन भारतीय व्यापार पर अधिकार रखने वाले अरब व्यापारियों ने पुर्तगालियों का विरोध किया। भारत में द्वितीय पुर्तगाली अभियान **पेड्रो अल्वारेज कैब्राल** के नेतृत्व में 1500 ई. में आया। प्रथम पुर्तगाली फैक्ट्री की स्थापना 1503 ई. में कोचीन में की गई तथा द्वितीय फैक्ट्री की स्थापना 1505 ई. में **कन्नूर** में की गई। इस प्रकार 15-16वीं सदी में पुर्तगालियों ने कालीकट, गोवा, दमन, दीव एवं हुगली के बंदरगाहों के आस-पास भी अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित कर लीं।

पुर्तगालियों का व्यापारिक घटनाक्रम

- **1498 ई. :** वास्कोडिगामा ने कालीकट तक की यात्रा की।
- **1503 ई. :** पुर्तगालियों ने भारत में अपनी पहली फैक्ट्री की स्थापना **कोचीन** में की।
- **1505 ई. :** पुर्तगालियों ने भारत में दूसरी फैक्ट्री कन्नूर में स्थापित की। **फ्रांसिस्को द अल्मीडा** को भारतीय क्षेत्र का प्रथम गवर्नर बनाया गया। पुर्तगालियों को मज़बूत समुद्री शक्ति के रूप में स्थापित करने के लिये उसने **ब्लू वाटर पॉलिसी** का सिद्धांत दिया।
- **1509 ई. :** अल्मीडा ने गुजरात, तुर्की एवं मिस्र के संयुक्त बेड़े को पराजित किया।
- **1510 ई. : अल्फांसो-डी-अल्बुकर्क** 1509 ई. में वायसरॉय बना। उसने बीजापुर के सुल्तान को पराजित कर गोवा पर 1510 ई. में अधिकार कर लिया।
- **1511 ई. :** पुर्तगालियों ने मलाया द्वीप में स्थित मलक्का पर अधिकार कर लिया।
- **1530 ई. :** पुर्तगालियों ने गोवा को अपने भारतीय राज्य की औपचारिक राजधानी बनाया।

आरंभिक वर्षों में पुर्तगालियों का व्यापार पर एकाधिकार रहा। उन्होंने एक **कॉर्टेज-आर्मेडा काफिला पद्धति** (Cortes-Armada Caravan System) के माध्यम से समुद्री व्यापार पर नियंत्रण कायम किया। फलस्वरूप समकालीन मुगल जहाज़रानी के लिये खतरा पैदा करके मुगल बादशाहों से व्यापार संबंधी छूट प्राप्त की।

पुर्तगाली समुद्री डकैती और लूटपाट में भी पीछे नहीं रहे। अमानवीय अत्याचार करने और अव्यवस्था फैलाने में भी उनका हाथ रहा। उन्होंने कट्टरता के द्वारा भारतीय समाज का ईसाईकरण करने का भी प्रयास किया। फलत: इन्हें विरोध का भी सामना करना पड़ा। भारत में **तंबाकू की खेती, जहाज़ निर्माण** तथा **प्रिंटिंग प्रेस** की शुरुआत पुर्तगालियों के आगमन के पश्चात् हुई। पुर्तगालियों ने ही 1556 ई. में गोवा में **प्रथम प्रिंटिंग प्रेस** की स्थापना की। भारत में **फलों** की कई प्रजातियों को लाने का श्रेय भी पुर्तगालियों को जाता है। पुर्तगालियों की दोषपूर्ण नीति के कारण 18वीं सदी की शुरुआत तक भारतीय व्यापार के क्षेत्र से पुर्तगालियों का प्रभाव कम हो गया तथा वे भारतीय व्यापार से बाहर हो गए। हालाँकि **गोवा, दमन और दीव** में 1961 ई. तक पुर्तगालियों का अधिकार बना रहा।

यूरोपीय कंपनियाँ व उनका स्थापना वर्ष

कंपनी	स्थापना वर्ष
1. एस्तादो द इंडिया (पुर्तगाली कंपनी)	1505
2. ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी	1600
3. वेरींगिदे ओस्त इंडिशे कंपनी (डच ईस्ट इंडिया कंपनी)	1602
4. डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी	1616
5. कंपने देस इंदेस ओरियंतलेस (फ्राँसीसी कंपनी)	1664
6. स्वीडिश ईस्ट इंडिया कंपनी	1731

भारत में डचों का आगमन (Arrival of the Dutches in India)

भारत आने वाली दूसरी यूरोपीय शक्ति डच ही थे। ये नीदरलैंड या हॉलैंड के निवासी थे। 1602 ई. में डच कंपनी यूनाइटेड ईस्ट इंडिया

27 ब्रिटिश कंपनी द्वारा भारत विजय
(India Conquest by British Company)

भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से 17वीं शताब्दी में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने प्रवेश किया। कंपनी को भारतीय व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने के लिये अन्य यूरोपीय कंपनियों तथा भारतीय राज्यों– बंगाल, मैसूर, मराठा, सिंध, पंजाब और अवध के विरोध का सामना करना पड़ा, किंतु भारतीय राज्यों के आपसी मतभेद और षड्यंत्रों ने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को उनके ऊपर अपना वर्चस्व स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान एवं अवसर प्रदान किया।

नवीन स्वायत्त राज्य (अठारहवीं शताब्दी)

राज्य	संस्थापक
हैदराबाद	निज़ामुलमुल्क (चिन किलिच खाँ)
अवध	सआदत खाँ (बुरहानुलमुल्क)
भरतपुर	चूड़ामन, बदन सिंह
कर्नाटक	सादतुल्ला खाँ
बंगाल	मुर्शिद कुली खाँ
मैसूर	हैदर अली
जयपुर	जयसिंह
रुहेलखंड (बंगश पठान)	मुहम्मद खाँ बंगश

बंगाल विजय (Bengal Victory)

सभी यूरोपीय शक्तियों में अपनी सर्वोच्चता साबित करने के बाद अंग्रेज़ों ने भारत पर आधिपत्य की शुरुआत बंगाल से की। बंगाल मुगलकाल के सबसे समृद्ध प्रांतों में गिना जाता था। अत: बंगाल पर नियंत्रण स्थापित कर वहाँ की धन-संपत्ति पर नियंत्रण स्थापित करना ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों के अनुकूल था, क्योंकि अंग्रेज़ों को दक्षिण में मैसूर और मराठों की बढ़ती शक्ति को नियंत्रित करने के लिये धन और कच्चे माल की आवश्यकता थी, जो बंगाल से पूरी की जा सकती थी। साथ ही बंगाल पर मुगल नियंत्रण भी कमज़ोर था। इस प्रकार बंगाल की आर्थिक समृद्धि एवं राजनीतिक अस्थिरता ने अंग्रेज़ों को बंगाल पर नियंत्रण स्थापित करने के लिये प्रेरित किया।

बंगाल के नवाब *(Nawabs of Bengal)*

मुर्शिद कुली खाँ (1717-27 ई.)

औरंगज़ेब ने मुर्शिद कुली खाँ को बंगाल का दीवान नियुक्त किया था, लेकिन 1707 ई. में औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुगल बादशाह फर्रूखशियर ने 1717 ई. में मुर्शिद कुली खाँ को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया, जिसने आगे चलकर मुगल साम्राज्य की कमज़ोरी का लाभ उठाकर स्वतंत्र बंगाल राज्य की नींव रखी। इसी समय 1717 ई. में मुगल शासक **फर्रूखशियर** ने एक फरमान द्वारा ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल में व्यापार करने की रियायत दे दी। इस फरमान के द्वारा बंगाल में **3000 रु.** वार्षिक कर अदा करने पर कंपनी के समस्त व्यापार को सीमा शुल्क से मुक्त कर दिया गया। साथ ही कलकत्ता के आस-पास 38 गाँवों को खरीदने का अधिकार भी मिल गया। फर्रूखशियर का यह फरमान अंग्रेज़ों के लिये तो मील का पत्थर साबित हुआ, लेकिन बंगाल के नवाबों के लिये यह सिरदर्द बन गया, क्योंकि इस फरमान का अंग्रेज़ व्यापारी प्राय: दुरुपयोग करते थे, जिससे नवाब को आर्थिक क्षति होती थी।

अलीवर्दी खाँ (1740–56 ई.)

वह सरफराज खाँ को गिरिया के युद्ध में पराजित कर नवाब बना था। वह योग्य प्रशासक था, जिसने अंग्रेज़ों को कलकत्ता में और फ्राँसीसियों को चंद्रनगर में किलेबंदी नहीं करने दी। **इसने अंग्रेज़ों की तुलना मधुमक्खी के छत्ते से की थी।**

सिराजुद्दौला (1756–57 ई.)

1756 ई. में बंगाल की नवाबी सिराजुद्दौला को प्राप्त हुई, किंतु नवाब की गद्दी के अन्य दावेदार भी थे, जिनमें शौकतजंग एवं घसीटी बेगम प्रमुख थीं। इस कारण बंगाल में एक सिराजुद्दौला विरोधी गुट बन गया। अंग्रेज़ों ने इस गुट को अपने खेमे में मिलाकर स्थिति से लाभ लेना चाहा। उन्होंने फ्राँसीसियों से खतरे का बहाना बनाकर किलेबंदी शुरू कर दी। सिराज ने अंग्रेज़ों को तत्काल किलेबंदी रोकने का आदेश दिया। अंग्रेज़ों के द्वारा आदेश की अवहेलना पर सिराज ने कासिम बाज़ार (कलकत्ता) स्थित अंग्रेज़ों के किले पर आक्रमण कर उन्हें आत्मसमर्पण के लिये बाध्य किया और फोर्ट विलियम को अपने अधिकार में ले लिया।

ब्लैक होल घटना (20 जून, 1756)

इस घटना के अंतर्गत माना जाता है कि सिराजुद्दौला ने बंदी बनाए गए 146 अंग्रेज़ों (इनमें स्त्रियाँ व बच्चे भी सम्मिलित थे) को 20 जून, 1756 की रात को एक 18 फीट लंबे तथा 14 फीट 10 इंच चौड़े कमरे में बंद कर दिया था, लेकिन जब 23 जून, 1756 की सुबह इस कोठरी (कमरे) को खोला गया तो इसमें मात्र 23 अंग्रेज़ ही जीवित बचे थे।

परंतु इस उपलब्धि को सिराज ज़्यादा दिनों तक न रख सका और क्लाइव के नेतृत्व में अंग्रेज़ों ने जनवरी 1757 में पुन: कलकत्ता पर अधिकार कर लिया और सिराजुद्दौला से **फरवरी** 1757 में **अलीनगर** की संधि की। अलीनगर की संधि से अंग्रेज़ों को बंगाल, बिहार, उड़ीसा में बिना चुंगी दिये व्यापार करने की अनुमति मिली। सिक्के ढालने और कलकत्ता की किलेबंदी रखने का अधिकार अंग्रेज़ों को प्राप्त हुआ। यह संधि सिराजुद्दौला के लिये अपमानजनक थी। अब अंग्रेज़ों को बंगाल में अपनी सत्ता को जमाने के लिये एक कठपुतली नवाब की आवश्यकता थी। सिराजुद्दौला की सत्ता पर कमज़ोर पकड़ एवं ढुलमुल नीति से

28 ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति
(British Imperialistic Policy)

सहायक संधि (Subsidiary Alliance)

सहायक संधि प्रणाली का सर्वप्रथम प्रयोग फ्राँसीसी गवर्नर डूप्ले ने किया था। उसने सैनिक सहायता देने के बदले भारतीय नरेशों से धन लेने की प्रथा शुरू की। अंग्रेज़ों के शासन में भी क्लाइव एवं उसके बाद के गवर्नर जनरलों के द्वारा इस प्रणाली का प्रयोग किया गया। सहायक संधि को व्यावहारिक रूप वेलेजली ने ही दिया।

वेलेजली की सहायक संधि प्रणाली
(Subsidiary Alliance System of Wellesley)

वेलेजली का मुख्य उद्देश्य कंपनी को भारत की सर्वोच्च शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना था और इसमें मुख्य रूप से बाधक था भारत में फ्राँसीसियों का बढ़ता प्रभाव, क्योंकि फ्राँस की क्रांति के उपरांत नेपोलियन भारत पर अधिकार करने के प्रयास में था, साथ ही टीपू जैसे भारतीय शासक फ्राँसीसियों से गठबंधन कर रहे थे। वेलेजली की यह साम्राज्यवादी योजना सहायक संधि के रूप में सामने आई।

सहायक संधि की विशेषताएँ
(Features of Subsidiary Alliance)

- देशी रियासतें एक ब्रिटिश रेज़ीडेंट रखेंगी, जो शासन-प्रबंधन में परामर्श देगा।
- भारतीय रियासतों के आंतरिक शासन में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।
- वह देशी रियासत, जो संधि को स्वीकार करेगी, कंपनी की स्वीकृति के बिना अपने राज्य में शत्रु राज्य के लोगों को शरण या नौकरी नहीं देगी।
- देशी रियासतों की रक्षा के लिये कंपनी वहाँ अंग्रेज़ी सेना रखेगी, जिसका खर्च उस रियासत को ही उठाना पड़ेगा। सेना के खर्च के लिये नकद धनराशि या राज्य का कुछ इलाका कंपनी को सौंपना होगा।
- देशी रियासत कंपनी की अनुमति के बिना किसी अन्य राज्य से युद्ध, संधि या मैत्री नहीं कर सकेगी अर्थात् वह अपनी विदेश नीति कंपनी को सुपुर्द कर देगी।

सहायक संधि का देशी रियासतों पर प्रभाव
(Impact of Subsidiary Alliance on Princely States)

- ब्रिटिश सैन्य सुरक्षा के कारण भारतीय रजवाड़े विलासी हो गए। उनमें स्वाभिमान एवं उत्तरदायित्व का कोई अंश शेष नहीं रहा। सुरक्षा की चिंता से मुक्त होकर वे तानाशाही करने लगे। जनता दुखी होकर विद्रोह करने लगी, परंतु उन पर कंपनी का हाथ होने के कारण विद्रोह सफल नहीं हो पाया।
- देशी रियासतों के शासक नाममात्र के शासक रह गए, उनकी सार्वभौम शक्ति समाप्त हो गई।
- हालाँकि अंग्रेज़ रेज़ीडेंट को आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप का अधिकार नहीं था, परंतु वे इसका उल्लंघन करते थे और निरंतर हस्तक्षेप करते थे। फलत: शासकों की रुचि शासन में कम हो गई।
- इस तरह की गतिविधियों ने भारतीय नरेशों की राष्ट्रीय भावना, साहस, सैन्य संगठन सभी को समाप्त कर दिया। फलत: भारतीय राज्य निरंतर पतनोन्मुख हुए।

सहायक संधि से कंपनी को लाभ
(Benefits to the Company from Subsidiary Alliance)

- कंपनी का भारत में प्रभुत्व स्थापित हो गया। कंपनी की प्रतिष्ठा एवं शक्ति में वृद्धि हुई।
- फ्राँसीसियों का प्रभाव भारतीय नरेशों के राज्यों से पूर्णत: समाप्त हो गया, क्योंकि अब उन्हें वहाँ नौकरी करने का अवसर प्राप्त नहीं हो सकता था।
- इस संधि से कंपनी को भारतीय राज्यों के खर्च पर एक बड़ी सेना मिल गई, जो हर समय किसी भी दशा में लड़ने के लिये तैयार थी।
- अंग्रेज़ों के विरुद्ध भारतीय राज्य कोई संघ या गुट बनाने से वंचित हो गए।
- सामरिक महत्त्व के स्थानों पर कंपनी का नियंत्रण स्थापित हो गया।
- सहायक संधि के माध्यम से कंपनी की साम्राज्यवादी सीमाएँ काफी आगे बढ़ गईं।
- कंपनी को बहुत से **प्रभुसत्तापूर्ण प्रदेश** मिल गए।
- कुछ प्रमुख राज्यों से सहायक संधियों का क्रम इस प्रकार है- **हैदराबाद** (1798 व 1800 ई.) → **मैसूर** (1799 ई.) → **तंजौर** (अक्टूबर 1799 ई.) → **अवध** (नवंबर 1801 ई.) → **पेशवा** (दिसंबर 1802 ई.) → बरार के **भोंसले** (दिसंबर 1803 ई.) → **सिंधिया** (दिसंबर 1803 ई.)। इसके अतिरिक्त जोधपुर, जयपुर, बूँदी तथा भरतपुर से भी सहायक संधियाँ की गईं।

विभिन्न राज्यों से की गई सहायक संधि

राज्य	संधि का समय	शासक
भरतपुर	1803,1805 (पुन:)	रणजीत सिंह
करौली	9 नवंबर, 1817	हरबक्ष पाल सिंह
टोंक	17 नवंबर, 1817	नवाब आमिर खान
कोटा	26 दिसंबर, 1817	महाराव उम्मेद सिंह
जोधपुर	6 जनवरी, 1818	महाराजा मानसिंह
उदयपुर	13 जनवरी, 1818	महाराणा भीम सिंह

29 ब्रिटिश शासन का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव
(Impact of British Rule on Indian Economy)

ब्रिटिश आर्थिक नीति (British Economic Policy)

अंग्रेज़ों की आर्थिक-प्रशासनिक नीतियों को **जॉन सुलिवन** की पंक्ति द्वारा समझा जा सकता है–

"हमारी प्रणाली एक ऐसे स्पंज के रूप में काम करती है, जो गंगा के किनारों से प्रत्येक अच्छी वस्तु को ले लेती है, फिर टेम्स के किनारों पर निचोड़ देती है।"

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न चरण *(Different Stages of British Colonialism in India)*

उपनिवेशवाद मूलत: एक आर्थिक संबंध है, जो राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ढाँचे को प्रभावित करता है। इसके माध्यम से किसी भी देश का आर्थिक शोषण तथा उत्पीड़न होता है और आर्थिक लाभ के साथ-साथ विदेशी जनसंख्या को विदेशी भूमि पर बसाना भी शामिल होता है। **औद्योगिक क्रांति** ने उपनिवेशवादी व्यवस्था को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया और भारत भी ब्रिटेन का उपनिवेश इसी व्यवस्था के परिणामस्वरूप बना। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न चरण इंग्लैंड के आर्थिक ढाँचे से प्रभावित होते रहे, इसलिये प्रत्येक चरण में गुणात्मक परिवर्तन होते रहे। इसी परिवर्तन के आधार पर ही भारत में उपनिवेशवाद को तीन प्रमुख चरणों में विभाजित किया गया है–

वाणिज्यिक पूंजीवाद का चरण (1757-1813 ई.) *[Phase of Commercial Capitalism (1757-1813 AD)]*

18वीं शताब्दी में भारत एक विशाल कृषि-प्रधान देश होने के साथ-साथ औद्योगिक देश भी था, क्योंकि एशिया और यूरोप के बाज़ारों में भारतीय कपड़ों की मांग थी। कृषि एवं उद्योग के संतुलन के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार भी भारत के पक्ष में था, क्योंकि भारत में आयात की तुलना में निर्यात बहुत अधिक होता था, किंतु भारत के इस बढ़ते व्यापार पर यूरोपीय पूंजीपतियों की कुदृष्टि पहले से ही थी। वे भारत आकर भारतीय पूंजीपतियों से प्रतिस्पर्द्धा करने लगे।

वाणिज्यिक पूंजीवादी चरण के प्रमुख लक्ष्य

- इस चरण में कंपनी का प्रमुख लक्ष्य था भारत से अत्यधिक पूंजी को एकत्रित करना।
- अंग्रेज़ भारत में न्यायिक व्यवस्था, यातायात, संचार आदि में बिना कोई मौलिक परिवर्तन किये अधिक से अधिक पूंजी अर्जित करना चाहते थे।
- कंपनी अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये सैनिक शक्ति, व्यापार केंद्र, मिलों आदि के लिये भारी धनराशि एकत्रित करना चाहती थी।
- भारतीय वस्तुओं को कम-से-कम कीमत पर खरीदना तथा यूरोप में इन वस्तुओं को भारी कीमत पर बेचकर अधिक- से-अधिक लाभ कमाना उनका लक्ष्य था।
- भारतीय व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार स्थापित करना।

नोट: ब्रिटेन के राजा ने 1765 ई. में एक फरमान द्वारा बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी ईस्ट इंडिया कंपनी को 26 लाख रुपए में दी थी।

वाणिज्यिक पूंजीवादी चरण के प्रभाव

- शिल्पकारों को न्यूनतम जीवन निर्वाह योग्य मज़दूरी नहीं दी गई और वे कृषि की तरफ मुड़ने को तैयार हो गए।
- राष्ट्रीय धन का एकमात्र स्रोत कृषि रह गया और अधिकतर जनसंख्या कृषि पर निर्भर हो गई।
- लगान को प्रतिवर्ष बढ़ाना और उसका बेरहमी से वसूल किया जाना, अंग्रेज़ों की आर्थिक-नीति का लक्ष्य था।
- भारत से धन का एकतरफा बहिर्गमन इंग्लैंड को होता रहा, जिससे इंग्लैंड की पूंजी में वृद्धि हुई और जिसकी परिणति इंग्लैंड की **औद्योगिक क्रांति** के रूप में हुई।
- इस चरण में भारत के कुटीर उद्योगों और समृद्ध व्यापार को गहरा धक्का लगा। 1765-71 ई. के बीच बंगाल के राजस्व का अधिशेष, जो लगभग 40 लाख पौंड था, कंपनी ने हड़प लिया।

एडम स्मिथ ने इस एकपक्षीय वस्तुओं के अधिगमन को तथा भारत से धन की प्राप्ति को **लूट** की संज्ञा दी और स्वामियों के अधिकरण को 'भारत में लुटेरों की नियुक्ति करने वाले अधिकरण' की संज्ञा दी।

औद्योगिक पूंजीवाद का चरण (1813-58 ई.) *[Phase of Industrial Capitalism (1813-58 AD)]*

ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति ने उसकी अर्थव्यवस्था तथा भारत के साथ उसके आर्थिक संबंधों को पूरी तरह बदलकर रख दिया। भारतीय हस्तशिल्प को असल धक्का 1813 ई. के बाद लगा, जब उसके हाथों से विदेशी बाज़ार ही नहीं छिन गए बल्कि इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उससे स्वयं भारतीय बाज़ार भी छिन गए। ब्रिटिश समाज में उद्योगपतियों के एक शक्तिशाली वर्ग के उदय ने भारतीय प्रशासन और इसकी नीतियों पर गहरा प्रभाव डाला। साम्राज्य में इस वर्ग की दिलचस्पी ईस्ट इंडिया कंपनी की दिलचस्पी से बहुत भिन्न थी। क्योंकि इस वर्ग का मुनाफा व्यापार से नहीं बल्कि कारखानों के उत्पादन की देन था। **आर.सी. दत्त** ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **दि इकॉनमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया** में लिखा है कि **1812 ई. में ब्रिटिश पार्लियामेंटरी से लेकर कमेटी के प्रयास का उद्देश्य यह पता लगाना था कि भारतीय कारखानों की जगह ब्रिटिश कारखानों को कैसे दी जाए और भारतीय उद्योगों की कीमत पर ब्रिटिश उद्योगों को कैसे प्रोत्साहित किया जाए।** इस चरण में 1813 ई. के चार्टर के अनुसार भारतीय बाज़ार को ब्रिटिश वस्तुओं के बाज़ार के लिये खोल दिया गया और कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार भी समाप्त कर दिया गया। अब ब्रिटिश शासन का उद्देश्य अधिक-से-अधिक राज्यों को प्रत्यक्ष नियंत्रण में लेना हो गया, ताकि इंग्लैंड में ब्रिटिश वस्तुओं के उत्पादों को भेजना आसान हो जाए।

30 ब्रिटिश भारत में औपनिवेशिक नीतियाँ
(Colonial Policies in British India)

ब्रिटिश भारत में शिक्षा का विकास
(Development of Education in British India)

1764 ई. के बक्सर युद्ध तक कंपनी की कोई शिक्षा नीति नहीं थी, फिर भी ईसाई मिशनरी, जो व्यापारियों के साथ-साथ भारत में आ गए थे, ने भारतीय हिंदू-मुस्लिम समुदाय के सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाज़ों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। **हिंदुओं और मुसलमानों को संबोधन** शीर्षक से छापी गई पुस्तिका में अंग्रेज़ मिशनरियों द्वारा मुहम्मद साहब को एक **झूठा-पैगंबर** कहा गया तथा हिंदू धर्म को केवल मूर्ति-पूजा, अंधविश्वास तथा अज्ञान का पुंज कहा गया था। इन मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य हिंदुओं और मुसलमानों को ईसाई बनाना था। कई विदेशी सहायता-प्राप्त पादरियों ने भारतीय समाज के पिछड़े हुए और कमज़ोर वर्गों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये धर्मार्थ औषधालय, अनाथालय और पाठशालाएँ भी खोलीं, जहाँ नि:शुल्क विद्या के अतिरिक्त भोजन और वस्त्र भी दिये जाते थे। दूसरी ओर, शिक्षा के प्रोत्साहन एवं विकास हेतु व्यक्तिगत स्तर पर भी कुछ प्रयास किये गए। ऐसे प्रयासों के कुछ प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं-

- 1781 ई. में **वॉरेन हेस्टिंग्स** द्वारा **कलकत्ता मदरसा** स्थापित किया गया, जिसका उद्देश्य मुस्लिम कानूनों तथा इससे संबंधित अन्य विषयों की शिक्षा देना था।
- 1791 ई. में बनारस के ब्रिटिश रेज़ीडेंट **जोनाथन डंकन** के प्रयासों से हिंदू-विधि एवं दर्शन का अध्ययन करने के लिये **बनारस में संस्कृत कॉलेज** की स्थापना की गई।
- 1800 ई. में लॉर्ड वेलेजली द्वारा असैनिक अधिकारियों की शिक्षा के लिये **फोर्ट विलियम कॉलेज** की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य कॉलेज में अधिकारियों को विभिन्न भारतीय भाषाओं तथा भारतीय रीति-रिवाज़ों की शिक्षा प्रदान करना था, किंतु 1802 ई. में डायरेक्टरों के आदेश पर यह कॉलेज बंद कर दिया गया।
- 1784 ई. में वॉरेन हेस्टिंग्स के सहयोगी **सर विलियम जोंस** ने **एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल** की स्थापना की, जिसके सदस्य चार्ल्स **विल्किंसन** ने पहली बार मूल **श्रीमद्‌भगवद्‌गीता** का संस्कृत से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। 1787 ई. में विल्किंसन द्वारा ही **हितोपदेश** का भी अनुवाद किया गया।
- 1789 ई. में विलियम जोंस ने कालिदास रचित **अभिज्ञान शाकुंतलम्** का अंग्रेज़ी अनुवाद किया तथा **गीतगोविंद** का भी अंग्रेज़ी अनुवाद किया। **मनुस्मृति** वह प्रथम ग्रंथ है, जिसका अनुवाद सबसे पहले संस्कृत से अंग्रेज़ी भाषा में **ए कोड ऑफ जेंटू लॉज** (A code of gentoo laws) के नाम से प्रकाशित हुआ।

राजा राममोहन राय, डेविड हेयर और सर हाइड ईस्ट ने मिलकर कलकत्ता में हिंदू कॉलेज की स्थापना की, जो कालांतर में प्रेसीडेंसी कॉलेज बना।

श्वेत जाति का भार सिद्धांत (Whiteman's Burden Theory)

'श्वेत जाति पर भार' की अवधारणा प्रसिद्ध ब्रिटिश लेकख रूडयार्ड (Rudyard Kiping) द्वारा दी गई थी। श्वेत जाति का भार सिद्धांत एक नस्लवादी विचारधारा है जिसमें कहा जाता है कि श्वेत लोग अन्य नृजातीय पृष्ठभूमि के लोगों से कुछ विशेष लक्षणों और गुणधर्मों में श्रेष्ठ होते हैं। अर्थात् श्वेत लोग अन्य की अपेक्षा ज़्यादा शिक्षित तथा सामाजिक हैं, इसलिये उन्हें राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से अश्वेत लोगों को शासित करना चाहिये। अंग्रेज़ों ने इस विचारधारा को अपनाकर अपने साम्राज्य का प्रसार किया।

आंग्ल-प्राच्य विवाद *(Anglo-Oriental Controversy)*

1813 ई. के चार्टर एक्ट द्वारा शिक्षा पर एक लाख रुपए खर्च करने के निर्देश के बाद भी 1823 ई. तक कंपनी के अधिकारियों द्वारा कुछ भी खर्च नहीं किया गया। वर्षों तक देश में इस प्रश्न को लेकर काफी वाद-विवाद चलता रहा कि यह खर्च किस दिशा में किया जाए, किंतु 1823 ई. में लोक शिक्षा की सामान्य समिति गठित की गई, जिसमें दस सदस्य शामिल थे। दुर्भाग्य से ये सदस्य पाँच-पाँच की संख्या में दो दलों में बँट गए। एक दल प्राच्य शिक्षा का समर्थक था और दूसरा आंग्ल शिक्षा का समर्थक। प्राच्य भाषा समर्थक दल यह चाहता था कि इस अनुदान का प्रयोग प्राच्य-भाषाओं के विस्तार के लिये किया जाए और दूसरा दल जो अंग्रेज़ी भाषा के द्वारा पश्चिमी विज्ञान तथा साहित्य के प्रसार के लिये इस धन का प्रयोग करना चाहता था।

प्राच्य विद्या के समर्थकों का नेतृत्व **लोक शिक्षा समिति** के सचिव **एच.टी. प्रिंसेप** ने किया। इनका समर्थन समिति के मंत्री **एच.एच. विल्सन** ने किया। प्राच्य विद्या के समर्थकों ने वॉरेन हेस्टिंग्स और मिंटो की शिक्षा नीति का समर्थन किया। उन्होंने हिंदुओं एवं मुस्लिमों के पुराने साहित्य के पुनरुत्थान को अधिक महत्त्व दिया। प्राच्य दल के लोग विज्ञान के अध्ययन को महत्त्व तो देते थे, परंतु वे इसका अध्ययन ऐसी भाषा में करना चाहते थे, जो आम भारतीयों के लिये सहज हो, किंतु उनका मुख्य ज़ोर परंपरागत भारतीय विद्या के प्रसार पर था। दूसरी ओर, पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार करने वाले विद्वानों के बीच इस मुद्दे पर विवाद खड़ा हो गया कि आधुनिक स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा का कौन-सा माध्यम अपनाया जाए? यह विवाद तब तक बना रहा, जब तक कि समकालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने टी.बी. मैकाले को समिति का अध्यक्ष नियुक्त नहीं कर दिया।

2 फरवरी, 1835 के प्रसिद्ध स्मरण-पत्र में मैकाले ने यह घोषणा की कि भविष्य में सरकारी अनुदान केवल आंग्ल भाषा के यूरोपीय साहित्य और विज्ञान के प्रसार के लिये ही दिया जाएगा। 1838 ई. में एक अन्य अधिसूचना द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि भविष्य में प्राच्य भाषा के लिये कोई धन उपलब्ध नहीं होगा।

31 ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीयों की प्रतिक्रिया
(Indian's Reaction to British Rule)

ब्रिटिश शासन ने भारत की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन किये तथा ब्रिटिश नीतियों ने भारत को इंग्लैंड का उपनिवेश बना दिया, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अनेक आंदोलन, विद्रोह तथा सैनिक विप्लव हुए। इन सभी आंदोलनों तथा विद्रोहों के प्रमुख कारणों में भारतीय शासन में विदेशी हस्तक्षेप, प्रशासनिक परिवर्तनों का होना, अर्थव्यवस्था का नष्ट होना, ग्रामीण निर्भरता की समाप्ति तथा अंग्रेज़ों की करों से संबंधित अनेक भू-राजस्व नीतियाँ आदि शामिल थे। इन आंदोलनों को इस प्रकार समझा जा सकता है-

जनजातीय एवं नागरिक विद्रोह
(Tribal and Civilian Revolt)

ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों के प्रतिक्रियास्वरूप सबसे पहले जनजातीय विद्रोह हुए। जनजातीय लोग भारतीय समाज का हिस्सा थे, किंतु उनके रीति-रिवाज़ व परंपराएँ समाज के अन्य वर्गों से अलग थीं। जब ब्रिटिश साम्राज्य का प्रसार जनजातीय क्षेत्रों में हुआ तो जंगली उत्पादों तथा संसाधनों ने औपनिवेशिक सरकार को अपनी ओर आकर्षित किया, परिणामस्वरूप उनका दोहन आरंभ हुआ। इससे जनजातीय असंतोष को बल मिला। अत: स्पष्ट है कि अंग्रेज़ी शासन के दौरान होने वाले आदिवासी जनजातीय विद्रोहों की पृष्ठभूमि बढ़ते हुए आर्थिक शोषण, प्रशासनिक जटिलताओं एवं सामाजिक असंतोष ने तैयार की। भौगोलिक स्थिति के अनुसार जनजातीय विद्रोहों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

जनजातीय एवं नागरिक विद्रोह

पूर्वी भारत तथा बंगाल के विद्रोह	पश्चिम भारत के विद्रोह	दक्षिण भारत के विद्रोह
❑ संन्यासी विद्रोह	❑ रामोसी विद्रोह	❑ विजयनगरम् के राजा का विद्रोह
❑ कोल विद्रोह	❑ कच्छ का विद्रोह	❑ वेलूथंपी का विद्रोह
❑ संथाल विद्रोह	❑ भील विद्रोह	❑ बुंदेला विद्रोह
❑ अहोम विद्रोह	❑ सूरत का नमक आंदोलन	❑ पोलिगारों का विद्रोह
❑ खासी विद्रोह	❑ गडकरी विद्रोह	
❑ पागलपंथी विद्रोह	❑ सावंतवादी विद्रोह	
❑ फराज़ी विद्रोह		
❑ मुंडा विद्रोह		

पूर्वी भारत तथा बंगाल के विद्रोह
(Revolt of Eastern India and Bengal)

संन्यासी विद्रोह (1770-1820, अन्य स्रोतों में 1763-1800)

प्रमुख क्षेत्र - बंगाल

प्रमुख नेता - गिरि संप्रदाय के संन्यासी

- बंगाल में अंग्रेज़ी राज्य स्थापित होने से वहाँ एक नई अर्थव्यवस्था की शुरुआत हुई, जिसके कारण बंगाल के ज़मींदार, कृषक तथा शिल्पी आदि की स्थिति दयनीय हो गई। बंगाल में पड़े (1770 ई. का) भीषण अकाल तथा कंपनी के पदाधिकारियों की कठोरता को लोगों ने विदेशी राज्य की देन समझा।
- 1770 ई. के इस भीषण अकाल ने बंगाल के निवासियों को त्रस्त कर दिया। इससे पूर्व अंग्रेज़ों द्वारा कई प्रतिबंध लगाए गए थे, जिसने बंगाल को जकड़-सा दिया था। तीर्थस्थलों की यात्रा पर लगे प्रतिबंधों से दुखी होकर **शंकराचार्य** के अनुयायी **गिरि संप्रदाय के संन्यासियों** ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह प्रारंभ कर दिया।
- संन्यासी विद्रोह की शुरुआत 1760 ई. से माना जाता है जो लगभग 1800 ई. तक चला।
- संन्यासी लोगों ने जनता के साथ मिलकर अन्याय के विरुद्ध लड़ने की परंपरा को बनाए रखते हुए सबसे पहले कंपनी की कोठियों तथा कोषों पर आक्रमण किया। इस आंदोलन में बेदखल किये गए किसान, विघटित सिपाही, सत्ताच्युत ज़मींदार तथा धार्मिक नेता शामिल थे। आंदोलनकारियों ने बलपूर्वक धन वसूला तथा अंग्रेज़ी फैक्ट्रियों में लूटपाट की। वॉरेन हेस्टिंग्स ने इस विद्रोह को दबाने के लिये दमन का सहारा लिया तथा आंदोलन को कुचल दिया। संन्यासी विद्रोह का उल्लेख **वंदे मातरम्** के रचयिता **बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय** ने अपने उपन्यास **आनंद मठ** में किया है।

कोल विद्रोह (1831–32 ई.)

प्रमुख क्षेत्र - छोटानागपुर

प्रमुख नेता - बुद्धो भगत और गंगा नारायण

- मैदानी लोगों द्वारा कोल कहे जाने वाले छोटानागपुर क्षेत्र में मुंडा, ओराँव, हो आदि जनजातियाँ निवास करती थीं। छोटानागपुर के कोलों के विद्रोह के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं-
- 1822 ई. में ब्रिटिश सरकार द्वारा चावल से बनने वाली शराब पर उत्पादन शुल्क का लगाया जाना, जिसे आदिवासी लोग उपयोग में लाते थे।
- अंग्रेज़ों की स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था ने भी आदिवासियों में असंतोष को बढ़ाया।

32 आधुनिक भारत में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन
(Socio-religious Reform Movements in Modern India)

18-19वीं शताब्दी का भारतीय समाज अंधविश्वास, जाति-व्यवस्था, वर्ण-भेद आदि रूढ़ियों के जाल में जकड़ा हुआ था। साथ ही अंग्रेज़ों की औपनिवेशिक नीतियों ने भी भारतीय समाज को प्रभावित किया। परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी में बौद्धिक एवं सांस्कृतिक उथल-पुथल मची। लोग धीरे-धीरे यह मानने लगे कि अपने समाज में फिर से प्राण फूँकने के लिये मानवतावाद, विवेक पर आधारित सिद्धांत, आधुनिक विज्ञान, पश्चिमी विचार आदि तत्त्वों को आत्मसात् करना पड़ेगा। साथ ही उन्हें यह अहसास हुआ कि उदारवादी विचारधारा तथा भारत में ब्रिटिश शासन की व्यावहारिकता में विरोधाभास है। इसी विरोधाभास के परिणामस्वरूप भारत में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन प्रारंभ हुआ।

भारत में सामाजिक धर्मिक सुधार आंदोलन के कारण (Cause of Socio-Religious Movements in India)

सामाजिक कारण

- ब्रिटिश शासन में अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार से भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग ने पाश्चात्य उदारवादी विचारधारा से प्रभावित होकर भारतीय सामाजिक ढाँचे एवं संस्कृति में विद्यमान कमज़ोरियों को दूर करने का प्रयास किया।
- ब्रिटिश सरकार द्वारा समाज-सुधार के लिये बनाए गए कानून भी सामाजिक-आर्थिक सुधार आंदोलन का कारण बने।
- ईसाई मिशनरियों के द्वारा ईसाई संस्कृति के प्रसार पर बल, प्रतिक्रियास्वरूप भारतीयों द्वारा अपनी संस्कृति एवं धर्म के प्रति पुनरुत्थान प्रक्रिया पर बल दिया गया।
- प्रेस, समाचार-पत्र, पत्र-पत्रिकाओं आदि के द्वारा अंग्रेज़ों की व्यवहारहीनता, शोषण एवं क्रूरता का ज्ञान भारतीयों को हुआ। अत: भारतीयों ने अपने समाज व धर्म की रक्षा हेतु प्रयत्न आरंभ किये।
- जवाहरलाल नेहरू, समाजवाद के समर्थक थे, वह 1933 में ब्रिटिश शासन, देशी राज्यों, ज़मींदारवाद तथा पूंजीवाद को उखाड़ फेंकना चाहते थे।

सांस्कृतिक कारण

- प्राच्यवादियों ने भारतीय अतीत और गरिमा का गुणगान करके भारतीयों का ध्यान अपनी संस्कृति और परंपरा की ओर आकृष्ट किया।
- 19वीं शताब्दी में इस सांस्कृतिक जागरण के प्रस्फुटन का एक कारण पश्चिमी देशों द्वारा प्रचारित की जा रही अपनी जातीय, भाषायी एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता के विरुद्ध भारतीयों की प्रतिक्रिया भी थी।

आर्थिक कारण

- 1813 ई. के एक्ट के द्वारा मुक्त व्यापार की नीति तथा भारतीय समाज में हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन का उदय हुआ।

राजनीतिक कारण

- आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव व विदेशी शक्ति द्वारा पराजित होने से उत्पन्न चेतना ने उन्नीसवीं सदी में एक नई जागृति को जन्म दिया।
- 19वीं शताब्दी में जाति-प्रथा के बंधन शिथिल पड़ने लगे थे, पारंपरिक स्वावलंबी ग्रामीण अर्थव्यवस्था ने अपनी पहचान खो दी थी। इन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों ने भारतीयों के बीच एकता बढ़ाई।
- लोकतंत्र एवं राष्ट्रवाद की भावनाएँ 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में चरम सीमा पर थी तथा इन भावनाओं ने शीघ्र ही पुनर्जागरण की प्रक्रिया के उद्भव एवं विकास के लिये पृष्ठभूमि तैयार की।

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन का स्वरूप (Nature of Socio-religious Reform Movements)

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन प्रमुख लक्ष्य समाज-सुधार था। चूँकि तत्कालीन समाज में अनेक कुरीतियाँ एवं आडंबर व्याप्त थे, इसीलिये धर्म में सुधारों के बगैर समाज सुधार तर्कहीन था। इस संबंध में विद्वानों में दो प्रमुख विचारधाराएँ थीं, जो प्रगतिशील एवं पुनर्स्थापनावाद वर्ग में बँटी थीं।

(i) **प्रगतिशील विचारधारा** के सुधारकों का मानना था कि तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं रूढ़ियों का अंत तभी संभव है, जब पाश्चात्य संस्कृति के कुछ ऐसे तत्त्वों को आत्मसात् किया जाए, जो मौलिक स्वरूप में भारतीय परंपरा से मेल खाते हों, किंतु ये विद्वान पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण नहीं करना चाहते थे। इन विद्वानों ने तर्कवाद एवं बुद्धिवाद को अपनाने पर बल दिया, ताकि भारतीय समाज में नई चेतना उत्पन्न हो सके। साथ ही वे संवैधानिक प्रक्रिया के तहत समाज में सुधार चाहते थे, जिसका प्रबल उदाहरण **1829 ई. में सती-प्रथा का निषेध होना** था। भौगोलिक दृष्टि से यह प्रवृत्ति महाराष्ट्र और बंगाल में अधिक दिखाई दी तथा इसका रूपांतरण उदारवादी कांग्रेस में दिखाई पड़ता है।

(ii) **पुनर्स्थापनावादी विचारधारा** विचारकों का प्रमुख लक्ष्य भारतीयों में वास्तविक मूल्यों की स्थापना करना था। इस विचारधारा में अंतर्निहित मूल तत्त्व यह था कि भारत व भारतीय समाज की दुर्दशा का मूल कारण भारतीयों का अपने प्राचीन वास्तविक मूल्यों से विमुख होना है। अत: इन्होंने पाश्चात्य संस्कृति का विरोध एवं स्वदेशी को प्रोत्साहित करने का कार्य किया। इनके अनुसार भारतीय संस्कृति में सभी गतिशील तत्त्व शामिल हैं, केवल उनकी उचित व्यवस्था की आवश्यकता है। इसके सटीक उदाहरण आर्य समाज व देवबंद स्कूल हैं और इस प्रवृत्ति का प्रसार **पंजाब तथा**

33 राष्ट्रवाद का उदय
(Rise of Nationalism)

राष्ट्रवाद कोई अचानक उत्पन्न होने वाली विचारधारा नहीं है बल्कि यह एक दीर्घकालिक विकासशील प्रक्रिया है। राष्ट्र के लिये एक ऐसी भावना/विचारधारा का होना आवश्यक है जो व्यक्तियों के समूह को आत्मिक रूप से जोड़ती है। यही विचारधारा **राष्ट्रीय आंदोलन** या **स्वतंत्रता आंदोलन** की उत्पत्ति का महत्त्वपूर्ण कारक बनती है।

कुछ इतिहासकार भारत में राष्ट्रवाद की उत्पत्ति को **प्रेरण-अनुक्रियावाद** से स्पष्ट करते हैं, जिसका आशय है- ब्रिटिश सरकार ने अपने हितों के लिये भारत में जो व्यवस्थाएँ लागू कीं, भारतीयों ने उन्हीं पर अनुक्रिया कर राष्ट्रवादी भावना को विकसित किया। उल्लेखनीय है कि भारत में राष्ट्रवाद की उत्पत्ति एक आधुनिक संकल्पना मानी जाती है। भारत में जैसे-जैसे औपनिवेशिक शासन विभिन्न अवस्थाओं से गुज़रा, वैसे-वैसे **भारतीय राष्ट्रवाद** भी विकसित होता गया। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना बहुत तेज़ी से विकसित हुई और भारत में एक संगठित राष्ट्रीय आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इसी समय **दिसंबर 1885** में **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस** की स्थापना हुई, जिसके नेतृत्व में भारतीयों ने एक लंबा और साहसपूर्ण संघर्ष चलाया और अंततः 15 अगस्त, 1947 को देश को ब्रिटिश दासता से मुक्ति मिली।

भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के कारण (Causes of Rise of Indian Nationalism)

भारत में राष्ट्रीय आंदोलन अथवा राष्ट्रवाद का उदय अनेक कारणों तथा परिस्थितियों का परिणाम था, जिन्हें निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है-

विदेशी आधिपत्य *(Foreign hegemony)*

- आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद बुनियादी तौर पर विदेशी आधिपत्य की चुनौती के जवाब के रूप में उभरा। स्वयं ब्रिटिश शासन की परिस्थितियों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना विकसित करने में सहायता की।
- राष्ट्रवाद की जड़ें भारतीय जनता के हितों तथा भारत में ब्रिटिश हितों के टकराव में थीं। भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग ने यह अनुभव किया कि लंकाशायर के उद्योगपतियों तथा अंग्रेज़ों के दूसरे प्रमुख वर्गों के हितों के लिये उनके अपने हितों का बलिदान दिया जाता है।
- किसान अपने उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा भू-राजस्व के रूप में देने से असंतुष्ट थे तथा जब कभी किसान ज़मींदारों और सूदखोरों के दमन के खिलाफ विद्रोह करते, तब पुलिस तथा सेना कानून व्यवस्था के नाम पर उनको कुचल दिया करती थी।
- दस्तकार और शिल्पी वर्ग ने यह महसूस किया कि सरकार विदेशी प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देकर उनको तबाह कर रही है तथा उनके पुनर्वास के लिये कोई प्रयास नहीं किया जा रहा है।
- 20वीं शताब्दी में आधुनिक कारखानों, खदानों तथा बागानों के मज़दूरों ने जब कभी **मज़दूर ट्रेड यूनियन,** हड़ताल, प्रदर्शन तथा संघर्ष आदि के द्वारा स्वयं की स्थिति को सुधारने का प्रयास किया, तब सरकार का पूरा तंत्र उनके खिलाफ उठ खड़ा होता था।
- समाज के कई वर्गों ने यह भलीभाँति समझ लिया था कि बढ़ती बेरोज़गारी का समाधान केवल तीव्र औद्योगीकरण से संभव है, जो एक स्वाधीन सरकार द्वारा किया जा सकता है।
- स्वयं ब्रिटिश शासन भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का प्रमुख कारण बनता गया और यह भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक विकास में प्रमुख बाधक तत्त्व बन गया।
- उभरते हुए भारतीय पूंजीपति वर्ग ने भी जल्द ही यह समझ लिया कि वह साम्राज्यवाद के कारण उन्हें नुकसान उठाना पड़ रहा है। अपनी शैशव अवस्था में उन्हें सरकार की सक्रिय सहायता की ज़रूरत थी लेकिन कोई सहायता नहीं मिली और उन्हें विदेशी पूंजीपतियों के साथ असमान प्रतियोगिता में खड़ा होना पड़ा।

आधुनिक शिक्षा *(Modern education)*

- शिक्षित भारतीयों का उभरता हुआ वर्ग अपने देश की दयनीय आर्थिक व राजनीतिक स्थिति को समझने के लिये नए-नए आधुनिक ज्ञान का उपयोग कर रहा था। यह शिक्षित वर्ग आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन का नेता एवं संगठनकर्त्ता बना।
- अंग्रेज़ों ने भारत में शैक्षणिक प्रणाली के आंग्ल-प्राच्य भाषा विवाद को रोककर आंग्ल शिक्षा को अपनाया। इस शिक्षा प्रणाली द्वारा ब्रिटिश भारतीयों में मानसिक गुलामी सृजित कर अपने साम्राज्य को स्थायी रूप देना चाहते थे जिसे तत्कालीन ब्रिटिश उदारवादी विचारकों ने भारत के आधुनिकीकरण से जोड़ा।
- नया शिक्षित वर्ग तत्कालीन आधुनिक मूल्यों को समझने लगा और उसमें लोकतांत्रिक आदर्शों, उदारवादी विचारों और मानव अधिकारों के प्रति संवेदना पैदा हुई।
- शिक्षित वर्ग ने जब **बेंथम** व **मिल** जैसे राजनीतिक विचारकों को पढ़ा तथा कई उदारवादी विद्वानों के लेखों व भाषणों को सुना तो उनमें भारतीयों के अधिकारों के प्रति चेतना पैदा हुई और इसी ने राष्ट्रवादी भावना के विकास की शुरुआत की।

प्रशासनिक एवं आर्थिक एकीकरण *(Administrative and economic integration)*

- अंग्रेज़ों ने अपने आर्थिक हितों के लिये अलग-थलग पड़े क्षेत्रों, विशेषतः गाँवों को बाज़ार से जोड़ा, जिसके कारण इन क्षेत्रों का अलगाव दूर हुआ और आर्थिक क्षेत्र में भी एकरूपता स्थापित होने लगी।

34 राष्ट्रीय आंदोलन का प्रथम चरण
(First Phase of National Movement)

उदारवादी चरण (Moderate Phase)

कांग्रेस के आरंभिक 20 वर्षों के काल को **उदारवादी राष्ट्रीयता** की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि इस काल में कांग्रेस की नीतियाँ काफी उदार थीं। इस समय कांग्रेस पर समृद्धशाली मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का प्रभाव था, जिनमें अधिकतर पत्रकार, वकील, इंजीनियर एवं डॉक्टर इत्यादि प्रमुख थे। ये उदारवादी नेता अंग्रेज़ी सरकार के प्रति निष्ठावान थे तथा उन्हें अपना शत्रु नहीं मानते थे। दादाभाई नौरोजी के इन शब्दों से अंग्रेज़ों के प्रति उनकी भावनाओं की मूर्त अभिव्यक्ति का पता चलता है– "हम ब्रिटिश प्रजा हैं, हम अपने हक की मांग कर सकते हैं। अगर हमें ब्रिटेन की सर्वश्रेष्ठ संस्थाओं से वंचित रखा जाता है तो फिर भारत को अंग्रेज़ों के स्वामित्व में रहने से क्या लाभ? यह तो एक और एशियाई निरंकुश शासन मात्र होगा।"

इस समय के उदारवादी नेताओं में फिरोज़शाह मेहता, बदरुद्दीन तैयबजी, व्योमेश चंद्र बनर्जी, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, आनंद मोहन बोस और रमेशचंद्र दत्त प्रमुख थे। कालांतर में द्वारिकानाथ गांगुली, एम.जी. रानाडे, वीर राघवाचारी, आनंद चारलू और गोपालकृष्ण गोखले भी इसमें शामिल हो गए।

उदारवादियों की कार्य-प्रणाली *(Working system of Moderates)*

उदारवादियों को नरमपंथी के नाम से भी जाना जाता था। उनकी कार्य-प्रणाली एक विशिष्ट तरीके की थी, जिसमें वे अपने प्रतिवेदनों, भाषणों और लेखों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार एवं उनके द्वारा स्थापित अंग्रेज़ी राज की प्रशंसा करते थे और अपनी मांगों को उनके पास रखते थे। वे अपनी उन मांगों को समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं के माध्यम से स्पष्ट करते थे ताकि जनता पर भी उनके कार्यों का प्रभाव पड़े।

इस चरण में कांग्रेस का अधिवेशन वर्ष में मात्र तीन दिन चलता था और वार्षिक अधिवेशनों के अतिरिक्त अपने कार्यक्रमों को जारी रखने के लिये कांग्रेस के पास किसी भी संगठित तंत्र का अभाव था।

इन उदारवादियों को आरंभ में यह विश्वास था कि भारतीयों के सारे कष्टों के पीछे नौकरशाही का भेदभावपूर्ण व्यवहार ही ज़िम्मेदार है और यदि ब्रिटिश सरकार को इस वास्तविक स्थिति से अवगत कराया जाए तो ब्रिटिश सरकार भारत में कल्याणकारी विकास कार्यक्रमों को बढ़ावा देगी।

उन्हें अंग्रेज़ों की न्यायप्रियता तथा उदारता का भ्रम था जिसके कारण वे एक अधिवेशन से दूसरे अधिवेशन तक समान प्रकार की मांगों से संबंधित प्रस्तावों की ही पुनरावृत्ति करते थे, चाहे ब्रिटिश सरकार उनकी मांगों को माने या न माने, वे कभी भी उग्र विरोध नहीं करते थे। उनकी मांगों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है– संवैधानिक, प्रशासनिक और आर्थिक।

उदारवादियों की संवैधानिक मांगें *(Constitutional demands of the Moderates)*

- उनकी मांग थी कि विधायिका में भारतीयों की संख्या में वृद्धि की जाए।
- वायसराय की कार्यकारी परिषद में दो भारतीय सदस्यों को भी शामिल किया जाए।
- पश्चिमोत्तर प्रांत एवं पंजाब में नई परिषदें स्थापित की जाएँ।
- ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन भारत में भी उसी प्रकार से स्वशासन की स्थापना हो जैसा कि कनाडा एवं ऑस्ट्रेलिया में स्थापित थे।

उदारवादियों की प्रशासनिक मांगें *(Administrative demands of the Moderates)*

- लोक सेवाओं में समान शर्तों के साथ भारतीयों की नियुक्ति तथा भविष्य में उन सेवाओं का भारतीयकरण किया जाए।
- भारत में स्थापित आर्म्स एक्ट को समाप्त किया जाए तथा भारतीयों को सुरक्षा हेतु अस्त्र रखने की छूट प्रदान की जाए।
- नागरिक अधिकारों को सुनिश्चित न करने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित करने वाली सभी प्रशासनिक कार्यवाहियों को समाप्त किया जाए।
- देश को अकाल से बचाने के लिये सिंचाई योजनाएँ लागू की जाएँ।
- प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करने तथा उच्च एवं तकनीकी शिक्षा के लिये अधिक बजट का प्रावधान किया जाए।

उदारवादियों की आर्थिक मांगें *(Economic demands of the Moderates)*

- साम्राज्यवादियों के आर्थिक कार्यकलापों की आलोचना तथा शोषण के विभिन्न रूपों, यथा – व्यापार, उद्योग तथा वित्त की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करना।
- उदारवादी नेता दादाभाई नौरोजी ने धन की निकासी का सिद्धांत दिया तथा मुक्त व्यापार की आलोचना की।
- सैन्य-व्यय में कटौती की जाए।
- भारतीय उद्योगों की सुरक्षा के लिये संरक्षणवादी नीति को अपनाया जाए।
- भारत के आर्थिक दोहन को समाप्त करके सरकार कल्याणकारी कार्यों की दिशा में कार्य करे।
- भू-राजस्व कम करना, नमक कर समाप्त करना तथा कृषि एवं बैंकों का विकास करना आदि।

उग्रवादी चरण (Extremist Phase)

1905 ई. से भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का दूसरा चरण प्रारंभ होता है, जिसे उग्रवादी चरण की संज्ञा दी गई है। यह ऐसा समय था जब

35 राष्ट्रीय आंदोलन का द्वितीय चरण
(Second Phase of National Movement)

होमरूल आंदोलन (Home Rule Movement)

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान 1916 ई. में बाल गंगाधर तिलक और श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा 'अखिल भारतीय होमरूल लीग' की स्थापना की गई। इसी लीग के द्वारा ब्रिटिश शासन के खिलाफ प्रथम विश्व युद्ध के दौरान राष्ट्रीय स्तर पर होमरूल आंदोलन चलाया गया। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहते हुए संवैधानिक तरीके से स्वशासन को प्राप्त करना था। तिलक और एनी बेसेंट ने आयरलैंड के होमरूल आंदोलन से प्रेरणा लेते हुए भारत में इस आंदोलन का सूत्रपात किया था।

इस आंदोलन के तहत स्वशासन के उद्देश्य को महत्त्व देते हुए धार्मिक स्वतंत्रता, राष्ट्रीय शिक्षा तथा राजनीतिक एवं सामाजिक सुधार को अपना आधारभूत कार्यक्रम बनाया गया और इस आंदोलन में दो अलग-अलग होमरूल लीग की स्थापना की गई पहले की बाल गंगाधर तिलक द्वारा अप्रैल 1916 में (पूना में) तथा दूसरे की एनी बेसेंट के द्वारा सितंबर 1916 में (मद्रास में)। इसी आंदोलन के दौरान तिलक ने यह लोकप्रिय नारा दिया- "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।"

तिलक की होमरूल लीग *(Tilak's Home Rule League)*

जून 1914 में तिलक 6 वर्ष के कारावास के बाद जेल से रिहा हुए और एक बार पुनः सक्रिय राजनीति में भाग लेने लगे, परंतु इस बार उन्होंने कांग्रेस से अलग एनी बेसेंट से मिलकर होमरूल आंदोलन शुरू करने की दिशा में प्रयास शुरू किया। एनी बेसेंट कांग्रेस के नेतृत्व में आंदोलन शुरू करना चाहती थीं। अतः अप्रैल 1916 में तिलक ने बेलगाँव में होमरूल लीग की स्थापना की। तिलक द्वारा स्थापित होमरूल लीग के अध्यक्ष जोसेफ बैपतिस्ता तथा सचिव एन.सी. केलकर थे। इस होमरूल लीग का कार्यक्षेत्र महाराष्ट्र (बंबई को छोड़कर), कर्नाटक, मध्य प्रांत एवं बरार तक फैला था।

तिलक ने मराठी भाषा में **केसरी** और अंग्रेज़ी में **मराठा** नामक पत्रों के माध्यम से होमरूल की अवधारणा का प्रचार किया। उन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण कर स्वराज प्राप्ति के लिये जनमत तैयार करने का प्रयास किया।

एनी बेसेंट की होमरूल लीग
(Annie Besant's Home Rule League)

सितंबर 1916 में एनी बेसेंट ने भी ऑल इंडिया होमरूल लीग की स्थापना की। उनके द्वारा स्थापित लीग के सचिव जॉर्ज अरुंडेल थे तथा बी.पी. वाडिया, सी.पी. रामास्वामी अय्यर, जवाहरलाल नेहरू, वी. चक्रवर्ती तथा जे. बनर्जी जैसे प्रमुख लोकप्रिय नेताओं ने इसकी सदस्यता ली। इस लीग का मुख्यालय अडयार (मद्रास) में स्थापित किया गया था। एनी बेसेंट ने लीग को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया। तिलक के कार्य क्षेत्र को छोड़कर लगभग संपूर्ण भारत में इस लीग की संस्थाएँ सक्रिय थीं। 1917 ई. में एनी बेसेंट कांग्रेस की अध्यक्ष बनीं। अध्यक्ष पद पर रहते हुए उन्होंने कहा- "भारत अब अनुग्रहों के लिये अपने घुटनों पर नहीं, बल्कि अधिकारों के लिये अपने पैरों पर खड़ा है।"

होमरूल आंदोलन की समाप्ति
(End of Home Rule Movement)

- होमरूल आंदोलन के बढ़ रहे प्रभाव से चिंतित होकर सरकार ने जून 1917 में एनी बेसेंट, जॉर्ज अरुंडेल, वी.पी. वाडिया को गिरफ्तार कर लिया। इस गिरफ्तारी के विरोध में सर एस. सुब्रह्मण्यम् अय्यर ने अपनी **नाइटहुड** की उपाधि वापस कर दी।
- गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा स्थापित संस्था सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी के सदस्यों को लीग में प्रवेश की अनुमति नहीं थी।
- ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्ज ने भारतीय जनमत को सांत्वना देने के विचार से भारतीय राष्ट्रीय भावना के समर्थक एडविन मॉन्टेग्यू को भारत सचिव नियुक्त किया। उन्होंने ब्रिटिश संसद में घोषणा की (20 अगस्त 1917), "शिक्षित भारतीयों की मांग निःसंदेह उनका अधिकार है तथा उन्हें उत्तरदायित्व संभालने और आत्मनिर्णय का अवसर दिया जाना चाहिये।"
- मॉन्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों की घोषणा के बाद एनी बेसेंट इसकी समर्थक बन गईं, दूसरी ओर तिलक को **इंडियन अनरेस्ट** के लेखक वेलेंटाइन शिरोल पर मानहानि का मुकदमा करने के लिये ब्रिटेन जाना पड़ा, फलस्वरूप होमरूल आंदोलन नेतृत्वविहीन होकर समाप्त हो गया।

होमरूल आंदोलन का प्रभाव
(Effect of Home Rule Movement)

- होमरूल आंदोलन ने राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान एक बार पुनः लोगों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक कराने का कार्य किया। यद्यपि यह आंदोलन अपने लक्ष्य अर्थात् **होमरूल** को नहीं प्राप्त कर सका, फिर भी इसके दूरगामी प्रभाव पड़े।
- कांग्रेस में लीग ने एक नई स्फूर्ति का संचार कर दिया तथा ब्रिटिश सरकार को एक नवीन नीति के लिये प्रेरित किया, जो मॉन्टेग्यू घोषणा के रूप में सामने आई।
- इस आंदोलन ने एनी बेसेंट को एक राष्ट्रीय स्तर का नेता घोषित कर दिया। लीग के प्रभाव से कांग्रेस में एक बार फिर उग्रवादियों का वर्चस्व स्थापित हो गया।
- 1917 ई. में श्रीमती एनी बेसेंट कांग्रेस की अध्यक्ष बनीं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की वह प्रथम महिला अध्यक्ष थीं।

लखनऊ समझौता *(Lucknow Pact)*

- 1916 ई. का कांग्रेस का लखनऊ सम्मेलन दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रहा। इस सम्मेलन की अध्यक्षता अंबिकाचरण मजूमदार ने की थी।

36 ब्रिटिशकालीन प्रमुख अधिनियम तथा प्रशासक
(Important Act and Administrator of British Period)

प्रमुख अधिनियम (Important Act)

रेग्यूलेटिंग एक्ट, 1773 *(Regulating Act, 1773)*

भारत के संवैधानिक इतिहास में 1773 का रेग्यूलेटिंग एक्ट विशेष महत्त्व रखता है। यह अधिनियम (Act) भारत में कंपनी के प्रशासन पर ब्रिटिश संसदीय नियंत्रणों के प्रयासों की शुरुआत थी। परिणामत: अब कंपनी के शासनाधीन क्षेत्रों का प्रशासन कंपनी के व्यापारियों का निजी मामला नहीं रहा। इस एक्ट में भारत में कंपनी के शासन के लिये पहली बार लिखित संविधान (Written Constitution) प्रस्तुत किया गया। एक्ट में उल्लिखित प्रावधान निम्नवत थे–

- इस एक्ट के द्वारा कलकत्ता में एक सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) की स्थापना की गई। इसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा तीन अवर न्यायाधीश होते थे। सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के विरुद्ध अपील लंदन स्थित प्रिवी काउंसिल (Privy Council) में की जा सकती थी। इस सर्वोच्च न्यायालय को प्राथमिक तथा पुनर्विचार संबंधी अधिकार दिये गए। यह न्यायालय 1774 ई. में गठित किया गया तथा सर एलीजा एंपे को इसका मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया।
- कुछ विशेष मामलों में मद्रास एवं बंबई प्रेसिडेंसियों को कलकत्ता प्रेसिडेंसी के अधीन कर दिया गया, जिसका प्रमुख एक गवर्नर जनरल (Governor General) होता था। गवर्नर जनरल की शक्तियाँ असीम थी। बंगाल में एक प्रशासक मंडल बनाया गया, जिसमें गवर्नर जनरल (अध्यक्ष) तथा चार सदस्य जिन्हें पार्षद कहा जाता था, को नियुक्त किया गया। इस प्रशासक मंडल में निर्णय बहुमत से होते थे। केवल मत बराबर होने की स्थिति में ही गवर्नर जनरल निर्णायक मत का प्रयोग कर सकता था।
- प्रशासक मंडल के सदस्यों का निर्वाचन पाँच वर्षों के लिये किया जाता था तथा वे कंपनी के निदेशक मंडल (Board of Directors) की सिफारिश पर ब्रिटिश क्राउन (British Crown) द्वारा ही हटाए जा सकते थे।
- इस अधिनियम के अनुसार कर्मचारी किसी भी प्रकार का उपहार, दान या पारितोषिक ग्रहण नहीं कर सकते थे।

पिट्स इंडिया एक्ट, 1784 *(Pitt's India Act; 1784)*

कंपनी पर अपने प्रभाव को मज़बूत करने के उद्देश्य से ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सन् 1784 में पिट्स इंडिया एक्ट पारित किया। इसके माध्यम से छ: सदस्यीय नियंत्रण बोर्ड (Board of Control) की व्यवस्था की गई। इस नियंत्रण बोर्ड को भारतीय प्रशासन के संबंध में निरीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण संबंधी व्यापक अधिकार दिये गए, हालाँकि कंपनी के व्यापार को अछूता छोड़ दिया गया। इस एक्ट के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार थे–

- भारत का प्रशासन गवर्नर जनरल व उसकी तीन-सदस्यीय परिषद के हाथ में रहेगा। परिषद सहित गवर्नर जनरल को इस बात का अधिकार होगा कि वह अन्य प्रेसिडेंसियों के कार्यों का निरीक्षण, नियंत्रण तथा निर्देशन कर सके। गवर्नर जनरल को अभी भी बहुमत के आधार पर कार्य करना होता था। पिट्स अधिनियम के द्वारा प्रांतीय गवर्नरों की कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या चार से घटाकर तीन कर दी गई। इनमें से एक सदस्य स्थानीय मुख्य सेनापति होता था। इस अधिनियम के द्वारा बंबई तथा मद्रास प्रेसिडेंसियों को भी गवर्नर जनरल व उसकी परिषद के अधीन कर दिया गया। इसमें यह भी निर्दिष्ट था कि गवर्नर जनरल की परिषद के सदस्य अनुबंधित सिविल सेवा (Covenanted Civil Service) से ही नियुक्त किये जाएंगे।
- भारत स्थित गवर्नर जनरल की नियुक्ति का अधिकार कंपनी के डायरेक्टरों को दिया गया जो ब्रिटिश सम्राट की पूर्व अनुमति से यह कार्य कर सकते थे। ब्रिटिश सम्राट को यह अधिकार था कि वह गवर्नर जनरल अथवा गवर्नरों को वापस बुला सके।
- यदि आवश्यक हो तो नियंत्रण बोर्ड अपना आदेश डायरेक्टरों की गुप्त समिति को भेज सकता था। इस बोर्ड का अध्यक्ष प्रारंभ में एक राज्य-सचिव होता था जो किसी विशेष वेतन का हकदार नहीं होता था।
- राजनीतिक एवं सामरिक मामले तीन डायरेक्टरों की गुप्त समिति (Secret Committee) देखेगी; गवर्नर जनरल एवं परिषद को इस समिति की अनुमति के बिना युद्ध की घोषणा करने अथवा कोई संधि करने का अधिकार नहीं होगा।

1786 का अधिनियम *(Act of 1786)*

इस अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को 'मुख्य सेनापति' के भी अधिकार दे दिये गए। अब उसे विशेष परिस्थितियों में परिषद के निर्णय को रद्द करने तथा अपने निर्णय लागू करने का विशेषाधिकार भी प्राप्त हो गया।

चार्टर अधिनियम, 1793 *(Charter Act, 1793)*

- कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार अगले 20 वर्षों तक के लिये बढ़ा दिया गया।
- परिषद के निर्णयों को रद्द करने का जो अधिकार लॉर्ड कॉर्नवालिस को था वह आने वाले गवर्नर जनरलों तथा गवर्नरों के पास भी रहेगा।
- मुख्य सेनापति को गवर्नर जनरल की परिषद का स्वत: सिद्ध (Ipso facto) सदस्य होने का अधिकार नहीं होगा, जब तक कि उसे डायरेक्टरों की समिति के द्वारा विशेष रूप से सदस्य के रूप में नियुक्त न किया जाए।

37 स्वातंत्र्योत्तर भारत
(Post Independence India)

संविधान सभा *(Constituent Assembly)*

भारत में संविधान सभा के सिद्धांत का दर्शन सर्वप्रथम तिलक के निर्देशन में निर्मित **स्वराज विधेयक** (1895) में दिखता है। 1922 ई. में महात्मा गांधी ने स्पष्ट कहा था– "भारत का संविधान भारतीयों की इच्छा के अनुसार निर्मित होगा।" 1924 में मोतीलाल नेहरू ने संविधान सभा की मांग ब्रिटिश सरकार के समक्ष रखी। इन प्रयासों के बावजूद औपचारिक रूप से संविधान सभा के लिये विचार का प्रतिपादन सर्वप्रथम **एम.एन. राय** ने किया, जिसे लोकप्रिय बनाने और मूर्त रूप देने का कार्य 1939 में जवाहर लाल नेहरू ने किया। समय-समय पर कांग्रेस ने इस मांग को उठाया। **1942 ई. में क्रिप्स मिशन ने संविधान सभा के गठन को स्पष्टतया स्वीकार किया और** 1946 ई. **में कैबिनेट मिशन प्रस्ताव द्वारा इसे व्यावहारिक स्वरूप मिला।**

संविधान सभा का निर्वाचन प्रांतीय विधानसभा के सदस्यों द्वारा **अप्रत्यक्ष प्रणाली** (वयस्क मताधिकार द्वारा नहीं) के तहत किया गया। प्रत्येक प्रांत और देशी रियासत को मोटे तौर पर 10 लाख की जनसंख्या पर एक स्थान मिला। इस प्रकार 389 में से 292 सदस्य ब्रिटिश भारत के 11 प्रांतों से, 93 देशी रियासतों से और 4 चीफ कमिश्नर के क्षेत्रों से थे। प्रत्येक प्रांत में स्थानों का वितरण तीन समुदायों के बीच उनकी जनसंख्या के अनुपात में किया गया। ये थे– **साधारण, मुस्लिम और सिक्ख समुदाय।**

जुलाई-अगस्त 1946 में ब्रिटिश भारत के प्रांतों को आवंटित 296 (292 +4 चीफ कमिश्नरी) स्थानों के लिये चुनाव संपन्न हुए, जिसमें कांग्रेस को 208, मुस्लिम लीग को 73 तथा छोटे दलों व निर्दलीय सदस्यों को 15 सीटें मिलीं। अन्य दलों में से कुछ को एक-एक सीट मिली। देशी रियासतों (Princely states) को आवंटित 93 सीटें नहीं भर पाईं, क्योंकि उन्होंने खुद को संविधान सभा से अलग रखने का निर्णय किया था। दिसंबर 1946 को संविधान सभा की प्रथम बैठक हुई, जिसमें मुस्लिम लीग ने भाग नहीं लिया। बाद में 3 जून, 1947 की विभाजन योजना के तहत पाकिस्तान के लिये पृथक् विधानसभा बनाई गई। बंगाल, पंजाब, सिंध, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, बलूचिस्तान और असम के सिलहट ज़िले के सदस्य भारत की विधानसभा के सदस्य नहीं रहे। पश्चिम बंगाल और पूर्वी पंजाब में पुन: निर्वाचन हुए और संविधान सभा का पुनर्गठन किया गया।

संविधान सभा की कार्यवाही *(Proceedings of the Constituent Assembly)*

9 दिसंबर, 1946 को संपन्न संविधान सभा की प्रथम बैठक में 211 सदस्यों ने भाग लिया, क्योंकि एक ओर मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की मांग उठाते हुए इस बैठक का बहिष्कार किया और दूसरी ओर इसमें देशी रियासतें भी सम्मिलित नहीं हुईं। किंतु जैसे-जैसे कार्यवाही आगे बढ़ी, वैसे-वैसे देशी रियासतों के प्रतिनिधि उसमें शामिल होने लगे। विभाजन की योजना के पश्चात् देशी रियासतों के प्रतिनिधि व भारतीय हिस्से की मुस्लिम लीग के सदस्य भी संविधान सभा में शामिल हुए। **हैदराबाद रियासत के प्रतिनिधि संविधान सभा में शामिल नहीं हुए।**

संविधान सभा की पहली बैठक **अस्थायी अध्यक्ष डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा** की अध्यक्षता में 9 दिसंबर, 1946 को हुई। 11 दिसंबर, 1946 को दूसरी बैठक में **डॉ. राजेंद्र प्रसाद को स्थायी अध्यक्ष** नियुक्त किया गया। 13 दिसंबर को जवाहरलाल नेहरू ने 'उद्देश्य प्रस्ताव' सभा में प्रस्तुत किया, जो 22 जनवरी, 1947 को संविधान सभा द्वारा स्वीकृत किया गया। यही 'उद्देश्य प्रस्ताव' संविधान की प्रस्तावना का आधार बना और इसी ने संपूर्ण संविधान के दर्शन को मूर्त रूप प्रदान किया।

स्वतंत्रता के बाद संविधान सभा ही भारत की पहली संसद अर्थात् विधायिका भी बन गई। **संविधान सभा के तौर पर इसकी अध्यक्षता डॉ. राजेंद्र प्रसाद करते थे, जबकि विधायिका (संसद) के तौर पर श्री जी.वी. मावलंकर।** 24 जनवरी, 1950 को संविधान सभा ने अपनी अंतिम बैठक में सर्वसम्मति से डॉ. राजेंद्र प्रसाद को भारत का प्रथम राष्ट्रपति चुना।

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान को पारित करने का प्रस्ताव रखा। 26 नवंबर, 1949 को उपस्थित 248 सदस्यों ने संविधान पर हस्ताक्षर किये, जिनमें 8 महिलाएँ थीं। 1949 को भारत का संविधान पूर्णरूप से तैयार हो गया था। संविधान की चार व्यवस्थाओं– अंतरिम संसद, नागरिकता, चुनाव व संविधान के अस्थायी प्रावधानों को **26 नवंबर, 1949** को लागू किया गया व शेष संविधान **26 जनवरी, 1950** को लागू हुआ। 26 जनवरी का यह दिन लाहौर में कांग्रेस द्वारा मनाए गए भारत के **प्रथम 'पूर्ण स्वराज दिवस' (26 जनवरी, 1930)** की स्मृति को संजोए रखने के लिये चुना गया।

संविधान सभा ने 2 वर्ष 11 माह और 18 दिन के अथक परिश्रम के पश्चात् हमारे संविधान का निर्माण किया। संविधान सभा के गठन तथा संविधान निर्माण में लगभग 64 लाख रुपए खर्च हुए।

नोट: भारतीय संविधान सभा में संवैधानिक सलाहकार बी.एन. राव थे।

संविधान निर्माण समितियाँ *(Constitution Making Committees)*

समिति	अध्यक्ष
❑ प्रारूप समिति	डॉ. बी.आर. अंबेडकर
❑ मूल अधिकार एवं अल्पसंख्यक समिति	सरदार वल्लभभाई पटेल
❑ संघ संविधान समिति	पं. जवाहरलाल नेहरू
❑ संघ शक्ति समिति	पं. जवाहरलाल नेहरू
❑ प्रांतीय संविधान समिति	सरदार वल्लभभाई पटेल
❑ कार्य संचालन समिति	के. एम. मुंशी
❑ देशी रियासत समझौता समिति	डॉ. राजेंद्र प्रसाद

38

प्रमुख व्यक्तित्व
(Famous Personalities)

जवाहरलाल नेहरू (1889-1964)

आज़ादी की लड़ाई में अग्रणी भूमिका निभाने के साथ-साथ आधुनिक भारत के निर्माणकर्त्ता और देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का जन्म 14 नवंबर, 1889 को इलाहाबाद (वर्तमान में प्रयागराज) में हुआ था। उन्होंने 6 बार कांग्रेस अध्यक्ष के पद को सुशोभित किया था।

उन्होंने 1920 में असहयोग आंदोलन में भाग लिया और संयुक्त प्रांत में आंदोलन का नेतृत्व किया। स्वतंत्रता के लिये भारत की लड़ाई के अंतर्राष्ट्रीयकरण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। नेहरू ने दिसंबर, 1929 के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज के लिये प्रस्ताव पेश किया था। 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में भी उन्होंने प्रमुख भूमिका निभाई। 27 मई, 1964 को उनकी मृत्यु हो गई।

अरुणा आसफ अली (1909-1996)

अरुणा आसफ अली का जन्म 16 जुलाई, 1909 को अविभाजित पंजाब के कालका में एक रूढ़िवादी हिंदू बंगाली परिवार में हुआ था। उनके बचपन का नाम अरुणा गांगुली था। उन्होंने 1928 में अपने माता-पिता की मर्ज़ी के विरुद्ध जाकर दिल्ली के एक मुस्लिम कांग्रेसी नेता आसफ अली से शादी कर ली और शादी के उपरांत अपने पति के साथ स्वतंत्रता संग्राम की मुहिम से जुड़ गईं।

अरुणा आसफ अली आज़ादी की लड़ाई में एक नायिका के रूप में उभर कर सामने आईं। 1930 व 1932 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान ये जेल गईं तथा 1940 में गांधीजी द्वारा व्यक्तिगत सत्याग्रह के आह्वान पर पुनः जेल गईं। परंतु, उनकी पहचान 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन से हुई। इस दौरान उन्होंने अपनी योग्यता को सिद्ध किया। उन्होंने गोवालिया टैंक मैदान में राष्ट्रीय ध्वज फहराकर भारत छोड़ो आंदोलन के आगाज़ की सूचना दी। ऐसा करके वो उन हज़ार युवाओं के लिये मिशाल बन गई थीं। 29 जुलाई, 1996 को अरुणा आसफ अली का देहांत हो गया।

अबुल कलाम आज़ाद (1888-1958)

भारत के पहले शिक्षा मंत्री और महान स्वतंत्रता सेनानी अबुल कलाम आज़ाद का जन्म 11 नवंबर, 1888 को मक्का, सऊदी अरब में हुआ था। उनके पिता 'मौलाना खैरूद्दीन' बंगाली थे, जबकि माँ 'आलिया' एक अरबी थीं। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता का समर्थन किया और सांप्रदायिकता पर आधारित देश के विभाजन का विरोध किया। उन्होंने 1912 में कलकत्ता में अपने साप्ताहिक 'अल-हिलाल' का प्रकाशन शुरू किया। अपने राजनीतिक विचारों के कारण वह कई बार जेल भी गए तथा कई बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति भी चुने गए। 1958 में उनकी मृत्यु हो गई।

अरविंद घोष (1872-1950)

अरविंद घोष आधुनिक भारत के एक महान विचारक व दार्शनिक थे। वे स्वतंत्रता आंदोलन के भी एक महान व प्रसिद्ध नेता थे जो बाद में योगी एवं रहस्यपूर्ण व्यक्ति बन गए। श्री अरविंद घोष का जन्म 15 अगस्त, 1872 को पश्चिम बंगाल के कोननगर में हुआ था। उन्होंने स्वदेशी पर बल दिया तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाई गई किसी भी योजना या अभियान का जमकर विरोध व बहिष्कार किया। 1910 में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर अलीपुर जेल में 1 वर्ष के लिये बंद कर दिया। अरविंद घोष ने एक दार्शनिक पत्रिका 'द आर्य' का प्रकाशन शुरू किया। इसके साथ ही 'द आइडियल ऑफ ह्यूमन यूनिटी', 'द सिंथिसिस ऑफ योग' व 'द लाइफ डिवाइन' नामक प्रसिद्ध पुस्तकों की रचना की।

सरदार वल्लभभाई पटेल (1875-1950)

स्वतंत्र भारत के प्रथम गृह मंत्री और "लौह-पुरुष" की उपाधि से प्रतिष्ठित वल्लभभाई पटेल का जन्म 31 अक्टूबर, 1875 को गुजरात के नादियाड में हुआ था। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में उनका एक विशेष स्थान है। गौरतलब है कि वल्लभभाई पटेल को 'सरदार पटेल' के भी याद किया जाता है। वे केवल एक निर्भीक व समर्पित स्वतंत्रता सेनानी ही नहीं थे, अपितु सामाजिक सेवा के कार्यों में भी उसी तरह समर्पित थे। उनकी अद्वितीय उपलब्धि थी- "एक नए भारत के निर्माण की यात्रा।" उनके सतत् प्रयासों के कारण ही स्वतंत्रता प्राप्ति के एक वर्ष के भीतर ही अखंड भारत का निर्माण हुआ।

डॉ. भीमराव अंबेडकर (1891-1956)

भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माता बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर 20वीं शताब्दी के एक श्रेष्ठ चिंतक, दूरदर्शी,यशस्वी वक्ता तथा ओजस्वी लेखक थे। उनका जन्म 14 अप्रैल, 1891 को मध्य प्रदेश के महू के एक महार परिवार में हुआ था। उन्होंने दलित बौद्ध आंदोलन को प्रेरित किया और अछूतों (दलितों) से सामाजिक भेदभाव के विरुद्ध अभियान चलाया था। इसके अलावा उन्होंने श्रमिकों, किसानों और महिलाओं के अधिकारों का भी समर्थन किया था। बेजुबान, शोषित और अशिक्षित लोगों को जागरूक करने के लिये वर्ष 1927 से 1956 के दौरान मूक नायक, बहिष्कृत भारत, समता, जनता और प्रबुद्ध भारत नामक पाँच साप्ताहिक एवं पाक्षिक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया।

राजेंद्र प्रसाद (1884-1963)

स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति और संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद का जन्म 3 दिसंबर, 1884 को बिहार के सिवान ज़िले के जिरादेई गाँव में हुआ था। गौरतलब है कि राजेंद्र प्रसाद अपने विद्यार्थी जीवन से ही स्वाधीनता संग्राम से जुड़े थे। उन्होंने बंगाल विभाजन के

39 भारतीय धरोहर
(Indian Heritage)

भारत में वैश्विक स्तर के धरोहर स्थल (World Heritage Sites in India)

भारत के स्थलों को विश्व धरोहर स्थल घोषित करने हेतु प्रतिवेदन भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा भेजा जाता है। यह केंद्र सरकार की नोडल एजेंसी है। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा केंद्र सरकार, राज्य सरकारों व प्रबंधन ट्रस्टों से प्राप्त प्रतिवेदनों की समीक्षा के उपरांत तैयार फाइल को विश्व विरासत केंद्र भेज दिया जाता है। वर्तमान समय में भारत के कुल 38 स्थल विश्व विरासत सूची में शामिल हैं जिनमें 30 सांस्कृतिक स्थल, 7 प्राकृतिक स्थल एवं 1 मिश्रित संपदा स्थल है। यूनेस्को का विश्व विरासत केंद्र किसी स्थल को तीन श्रेणियों, यथा– प्राकृतिक, सांस्कृतिक और मिश्रित संपदा श्रेणी में वर्गीकृत करता है।

भीमबेटका के शैल आवास, मध्य प्रदेश

भीमबेटका की खोज 1957 ई. में **विष्णु श्रीधर वाकनकर** ने की थी। यहाँ से पाषाण काल के आवास स्थल प्राप्त हुए हैं। भीमबेटका 'रातापानी वन्य जीव अभयारण्य' में स्थित है। यह अभयारण्य मध्य प्रदेश के रायसेन ज़िले में स्थित है।

- इन शैल आवासों को यूनेस्को की विश्व विरासत सूची में 2003 ई. में शामिल किया गया था।
- भीमबेटका की गुफाएँ पाषाणकालीन चित्रकारी के लिये प्रसिद्ध हैं। इन गुफाओं में आदिमानव द्वारा बनाए गए कई शैलचित्र विद्यमान हैं– इन चित्रों को पुरा पाषाण काल से लेकर मध्यपाषण काल के समय का माना जाता है।

आगरा का किला, उत्तर प्रदेश

- यह किला 1565-73 ई. के मध्य आगरा में मुगल बादशाह अकबर द्वारा बनवाया गया था।
- यह किला **लाल बलुआ पत्थर** से बना है।
- यह किला यमुना नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है।
- आगरा के किले को विश्व विरासत सूची में **1983 ई.** में शामिल किया गया।
- यह किला **लगभग 2.5 किमी.** लंबी दीवार से घिरा हुआ है।
- इस किले में जहाँगीरी महल, दीवान-ए-खास, खास महल और दीवान-ए-आम आदि स्थित हैं।
- इस किले में दो बहुत ही सुंदर मस्जिद (मोती मस्जिद, नगीना मस्जिद) भी स्थित हैं।

महाबलीपुरम् के स्मारक, तमिलनाडु

- महाबलीपुरम् के स्मारकों को विश्व विरासत सूची में 1984 ई. में शामिल किया गया था।
- यह स्मारक काँचीपुरम्, तमिलनाडु में स्थित है।
- पल्लव शासकों द्वारा सातवीं-आठवीं शताब्दी में यहाँ मंदिरों का निर्माण करवाया गया था।
- महाबलीपुरम् का उल्लेख **टॉलमी** और **पेरीप्लस ऑफ द एरीथ्रियन सी** के लेखक ने कोरोमंडल तट पर स्थित प्राचीन बंदरगाह शहर के रूप में भी किया था।
- यहाँ प्राप्त मंदिर समूहों में शोर मंदिर, महाबलीपुरम् के गुहा मंदिर, पाँच पांडवों के रथ मंडप (रथ के रूप में मंदिर), कृष्ण गुहा मंदिर आदि प्रमुख हैं।
- रथ मंडप में सबसे बड़ा रथ युधिष्ठिर रथ (धर्मराज रथ) जबकि सबसे छोटा द्रौपदी रथ है।

हंपी स्मारक समूह, कर्नाटक

- यूनेस्को की विश्व विरासत सूची में हंपी स्मारकों को 1986 ई. में शामिल किया गया।
- हंपी कर्नाटक के बेल्लारी नामक स्थान पर स्थित है।
- हंपी 14-16वीं शताब्दी के बीच **विजयनगर साम्राज्य** की राजधानी रही।
- यहाँ स्थित विरूपाक्ष मंदिर, विट्ठल स्वामी मंदिर अत्यंत प्रसिद्ध हैं।
- हंपी की अवस्थिति तुंगभद्रा नदी के किनारे है, इस नदी का पुराना नाम पंपा था।
- हंपी में स्थित मंदिर द्राविड़ शैली में बने हुए थे। मंदिरों में बने खंभे अलंकृत होते थे।

फतेहपुर सीकरी, उत्तर प्रदेश

- फतेहपुर सीकरी को विश्व विरासत सूची में 1986 ई. में शामिल किया गया था।
- यह उत्तर प्रदेश के आगरा ज़िले में स्थित है।
- इसका निर्माण मुगल बादशाह **अकबर** के समय 1571-73 ई. के मध्य हुआ था।
- इसका निर्माण **हिंदू-पारसी वास्तुकला** के आधार पर किया गया था।
- फतेहपुर सीकरी में बुलंद दरवाज़ा, अनूप तालाब, जामा मस्जिद, पंचमहल, जोधाबाई का महल, ख्वाबगाह आदि प्रमुख स्मारक स्थित हैं।
- यहीं पर संगमरमर से निर्मित **शेख सलीम चिश्ती** की दरगाह अवस्थित है।
- यहाँ पर स्थित बुलंद दरवाज़े का निर्माण अकबर ने अपनी गुजरात विजय के दौरान कराया था।
- फतेहपुर सीकरी के निर्माण में अधिकांशत: लाल बलुआ पत्थर का उपयोग हुआ है।

हुमायूँ का मकबरा, दिल्ली

- विश्व विरासत सूची में हुमायूँ के मकबरे को 1993 ई. में शामिल किया गया था।

40 पुनर्जागरण एवं धर्म सुधार
(Renaissance and Religion Reformation)

पुनर्जागरण (Renaissance)

यूरोपीय इतिहास की विवेचना के संदर्भ में पुनर्जागरण काल सामान्यत: लगभग 1350 से 1550 ई. के बीच माना जाता है, परंतु कुछ इतिहासकार इसे 14वीं से लेकर 17वीं शताब्दी तक मानते हैं। पुनर्जागरण फ्रेंच शब्द 'रिनेसा' (Renaissance) से बना है, जिसका अर्थ होता है–पुनर्जन्म। पुनर्जन्म या पुनर्जागरण से तात्पर्य प्राचीन यूरोपीय संस्कृति के पुन: उत्थान से है। अत: पुनर्जागरण एक उदार बौद्धिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन था जिसमें प्राचीन यूरोप की प्रेरणा के आधार पर नए यूरोप का निर्माण हो रहा था। इसे आधुनिक विचारों, तर्क और विज्ञान के धरातल पर जाँचा और परखा गया था।

पृष्ठभूमि *(Background)*

- विद्वानों ने विश्व इतिहास को तीन भागों में बाँटा है। प्रारंभ से पाँचवी शताब्दी तक प्राचीन काल माना जाता है। यह युग रोम तथा यूनान की उन्नति का युग था। इस युग में मनुष्य सुखी था। धर्म का प्रभाव अभी तक मनुष्य जीवन पर स्थापित नहीं हुआ था।
- मध्यकाल से पूर्व ही रोमन साम्राज्य दो भागों-पूर्वी और पश्चिमी में विभाजित हो गया था। पाँचवी–छठी शताब्दी में रोमन साम्राज्य पर हुए बर्बर आक्रमणों ने रोम साम्राज्य का विघटन कर दिया था। जिससे रोम और यूनान की प्राचीन संस्कृतियों का भी पतन हो गया।
- रोम और यूनान की प्राचीन संस्कृतियों के पतन के साथ ही यूरोप में मध्य युग का आरंभ होता है। यह युग लगभग 14वीं शताब्दी तक रहा। इसे अंधकार युग भी कहा जाता है। इस काल में निरंकुश सामंतशाही तथा चर्च का दबदबा हो गया जिसने मनुष्य की वैचारिक स्वतंत्रता तथा बौद्धिक प्रगति का मार्ग अवरुद्ध कर दिया।
- वस्तुत: पुनर्जागरण की प्रक्रिया अचानक प्रारंभ नहीं हुई यह क्रमिक विकास का प्रतिफल था। किंतु उत्तर–मध्यकाल से ही अंधकार युग से निकलने के निरंतर प्रयास हो रहे थे।
- पुनर्जागरण से पहले ऐसे दो सांस्कृतिक आंदोलन हो चुके थे जिन्होंने प्राचीन भाषा संस्कृति के अध्ययन पर बल डाला था। पहला नवीं शताब्दी का **कैरोलिंगियन पुनर्जागरण** जिसने लैटिन भाषा के अध्ययन को बढ़ावा दिया। दूसरा 12वीं शताब्दी में मानववादी विचारों के विकास में उद्घाटित हुआ, जिसमें शिक्षा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाकर पुरातन शास्त्रीय और नैतिक ग्रंथों की खोज को प्रबल बनाया।
- फ्राँस के पीटर आबेलार (1079–1142 ई.) इंग्लैंड के रोजर बेकन (1214–1294 ई.) इटली का दांते (1265–1321 ई.) ने धार्मिक संकीर्णता की कटु आलोचना कर एवं प्रगतिशील मानवादी विचारों को वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान कर पुनर्जागरण को अपरिहार्य बना दिया।
- उपर्युक्त घटनाओं के सम्मिलित प्रभाव से 14वीं से 16वीं सदी के यूरोप में एक नई चेतना दृष्टिगत होती है। इस नवीन चेतना ने मध्यकालीन अंधकार को समाप्त कर प्राचीन गौरव को पुनर्स्थापित किया। इस प्रकार उदित हुई इस नई चेतना को पुनर्जागरण कहा गया।

पुनर्जागरण के कारण *(Causes of Renaissance)*

पुनर्जागरण किसी एक घटना का परिणाम नहीं था बल्कि यह लगभग दो शताब्दियों के सम्मिलित मानव प्रयासों का परिणाम था। पुनर्जागरण के लिये निम्नलिखित कारणों को उत्तरदायी माना जाता है–

- धर्मयुद्ध
- सामंतवाद का पतन
- व्यापार–वाणिज्य का विकास
- कुस्तुन्तुनिया का पतन
- भौगोलिक खोजें
- कागज़ एवं मुद्रण प्रणाली का आविष्कार
- मंगोल साम्राज्य का उदय
- शिक्षा एवं साहित्य का विकास

इटली से ही पुनर्जागरण का सूत्रपात क्यों? *(Why did the Renaissance begin from Italy?)*

- पुनर्जागरण के लिये सबसे अनुकूल स्थितियाँ इटली में मौजूद थीं। वह भूमध्यसागर के मध्य स्थित था। अत: अरब व्यापारियों द्वारा लाए गए अधिकांशत: सामानों की बिक्री इटली में ही होती थी। अत: इटली एक यूरोपीय व्यापारिक केंद्र के रूप में स्थापित हो गया था। व्यापारिक केंद्र होने से भौतिक संपन्नता आई और इस संपन्नता ने सांस्कृतिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया।
- व्यापारिक गतिविधियों के कारण मिलान, नेपल्स, फ्लोरेंस, वेनिस आदि नगरों की स्थापना हुई। उन बड़े नगरों में संग्रहालयों, सार्वजनिक पुस्तकालयों, नाट्यशालाओं की स्थापना संभव हुई। ये संस्थाएँ पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि बन कर उभरीं।
- इटली की समृद्धि से व्यापारिक मध्यम वर्ग का उदय हुआ। इसने सामंतों और पोप की परवाह करना बंद कर दिया था। समृद्ध व्यापारिक वर्ग ने साहित्यकारों, कलाकारों को प्रश्रय दिया। इनमें दाँते, पेट्रार्क, एंजेलो, लियोनार्दो आदि प्रमुख थे। इन विद्वानों ने पुनर्जागरण चेतना का प्रसार किया। इटली में व्यापार के विकास के साथ नई प्रकार की शिक्षा का विकास हुआ जिसमें व्यावसायिक ज्ञान, भौगोलिक ज्ञान आदि को महत्त्व दिया गया जबकि उत्तरी यूरोपीय विश्वविद्यालयों में धर्मशास्त्रों के अध्ययन पर ही विशेष बल दिया जाता था। रोमन विधि, चिकित्सा जैसी धर्मनिरपेक्ष उपयोगी शिक्षा के कारण इटली में पुनर्जागरणकालीन चेतना का विकास हुआ।

41 प्रबोधन
(Enlightenment)

प्रबोधन (Enlightenment)

- प्रबोधन का शाब्दिक अर्थ है- एक लंबे काल के अंधकार के पश्चात् ज्ञान का प्रकाश। यहाँ अंधकार से तात्पर्य अज्ञान और अंधविश्वास से है, जबकि प्रकाश से तात्पर्य ज्ञान से है।
- प्रबोधन की विचारधारा 1680 के दशक में ब्रिटेन से प्रारंभ होकर संपूर्ण यूरोप में फैल गई।
- ऐसा माना जाता है इस विचारधारा के जनक डेकार्ते एवं हॉब्स हैं। इन्होंने आधुनिक तर्कवाद को प्रोत्साहन दिया, किंतु व्यावहारिक रूप में इस विचारधारा के जनक न्यूटन एवं लॉक हैं।
- इस प्रकार 18वीं शताब्दी में पुनर्जागरणकालीन तार्किक, वैज्ञानिक आविष्कारों और अनुसंधानों एवं मानवतावादी खोजों के कारण न केवल विज्ञान के क्षेत्र में बल्कि धर्म, राजनीति, अर्थव्यवस्था, दर्शन, साहित्य, आदि के क्षेत्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उदय हुआ।

पृष्ठभूमि *(Background)*

सामाजिक पृष्ठभूमि

- 14वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य हुए पुनर्जागरण, धर्म सुधार तथा व्यापार-वाणिज्य के विकास ने यूरोपीय समाज को परिवर्तनग्राही बना दिया था।
- इस काल में मध्यवर्ग ने समाज में नई शक्ति के रूप में अपना स्थान बना लिया था।
- सामंती अर्थव्यवस्था के पतन के कारण मनुष्य के लिये आजीविका तथा रोज़गार के नए अवसर उपलब्ध हो रहे थे। इन्होंने मनुष्य के सुखद भौतिकवादी जीवन की संकल्पना को मज़बूत बनाया।
- प्रगतिशील विचार यूरोपीय समाज को रुढ़िवादी विचारों, परंपराओं तथा अन्य भ्रमों को समाप्त करने के लिये प्रेरित कर रहे थे।

तकनीकी/वैज्ञानिक पृष्ठभमि

- 16वीं सदी में पुनर्जागरण ने वैज्ञानिक विचारों को प्रोत्साहन दिया था, किंतु 17वीं शताब्दी में विज्ञान के क्षेत्र में हुई नवीन अभिव्यक्ति ने वैज्ञानिक क्रांति का रूप लेकर प्रबोधन के लिये आधार का कार्य किया।
- यूरोप में अनेक वैज्ञानिक सोसाइटी स्थापित होने लगीं तथा वैज्ञानिकों का समूह मिल जुलकर कार्य करने लगा, जैसे- 1660 ई. में रॉयल सोसाइटी ऑफ लंदन एवं 1666 ई. में फ्रेंच एकेडमी ऑफ साईंस।
- इन वैज्ञानिक सोसाइटियों ने ज्ञान के क्षेत्र में तर्कवाद को बढ़ावा देकर समस्या का समाधान तार्किक एवं प्रयोगों के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास किया।
- वैज्ञानिक एवं तर्कवादी विचारों ने प्रकृति पर से रहस्य का पर्दा हटाकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि प्रकृति अपने नियमों से चलती है उसे ईश्वर नहीं चलाता।
- मध्यम वर्ग ने इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग अपने पक्ष में करते हुए यह घोषित किया कि जब प्रकृति के मामले में ईश्वर का हस्तक्षेप नहीं होता है तो फिर राजनीतिक-आर्थिक एवं सामाजिक संस्थाओं के संचालन में बाह्य हस्तक्षेप (राजतंत्र, कुलीनतंत्र, चर्च) आदि का नहीं होना चाहिये। फलत: पूरा यूरोप तर्क, विज्ञान और उद्यम की मदद से जीवन में सुधार का पक्षधर हो गया।

प्रबोधन से जुड़ी विशेषताएँ
(Characteristics Related to Enlightenment)

ज्ञान को विज्ञान के साथ जोड़ना: प्रबोधन के चिंतकों ने ज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान के साथ जोड़ दिया। पर्यवेक्षण, प्रयोग और आलोचनात्मक छानबीन की व्यवस्थित पद्धति का प्रयोग ज्ञानोदय के चिंतकों की नज़र में सत्य तक पहुँचने का सक्षम आधार था।

प्रयोग एवं परीक्षण पर बल: मध्य युग में ईसाई मत के प्रभावस्वरूप मनुष्य एवं ब्रह्मांड के बारे में सत्य का केवल **उद्घाटन** हो सकता है, इसलिये उसे केवल पवित्र पुस्तकों के ज़रिये जाना जा सकता है।

ज्ञानोदय ने इस अतार्किक धारणा को खारिज कर दिया और दावा किया कि जिन चीज़ों को बुद्धि के प्रयोग व व्यवस्थित पर्यवेक्षण से नहीं जाना जा सकता, वे मायावी हैं।

कार्य-कारण संबंध का अध्ययन: कार्य-कारण संबंध का अध्ययन विज्ञान संबंधी प्रबोधन चिंतन का केंद्रीय तत्त्व था। चिंतकों ने ऐसी पूर्ववर्ती घटना को चिह्नित करने की कोशिश की जिसका होना किसी परिघटना के पैदा होने के लिये अनिवार्य है और पूर्ववर्ती घटना के न होने से परवर्ती घटना पैदा नहीं होती। **वस्तुत: कारणों की खोज प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण पर मनुष्य का नियंत्रण बढ़ाने के साधन के रूप में की जाने लगी।**

मानवतावाद: प्रबोधन युग के चिंतकों ने मानव की खुशी और भलाई पर बल दिया। उनके अनुसार मनुष्य स्वभाव से ही विवेकशील और अच्छा है किंतु स्वार्थी धर्माधिकारियों और उनके द्वारा बनाए गए नियमों ने मनुष्य को भ्रष्ट कर दिया। यदि मनुष्य अपने को इन स्वार्थी धर्माधिकारियों के चंगुल से मुक्त कर सके तो एक आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है। **न्यूटन (Newton)** ने प्रकाश के मौलिक रहस्यों का पता लगाया और प्रकाश विज्ञान की स्थापना की। **बेंजामिन फ्रैंकलिन** सहित कई लोगों ने विद्युत की खोज में अपना योगदान दिया।

समानता एवं स्वतंत्रता पर बल: दिदरो ने व्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में तर्क देते हुए कहा- **"प्रकृति ने किसी को भी दूसरों को आदेश देने का अधिकार नहीं दिया है, स्वतंत्रता दैवी दान है।"** प्रबोधन के चिंतकों ने कहा कि सब मनुष्य एक समान उत्पन्न होते हैं और उनमें जो विषमता पाई जाती है इसका कारण केवल यह है कि सबको शिक्षा एवं उन्नति का समान अवसर नहीं मिलता।

42 औद्योगिक क्रांति
(Industrial Revolution)

18वीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं 19वीं सदी में ब्रिटिश उद्योगों को अनेक महत्त्वपूर्ण एवं व्यापक परिवर्तनों से गुज़रना पड़ा, जिसके कारण इन परिवर्तनों को समवेत रूप में औद्योगिक क्रांति कहा जाने लगा। वस्तुत: यह कोई आकस्मिक घटना नहीं अपितु विकास की एक सतत् प्रक्रिया थी, औद्योगिक क्रांति के अंतर्गत बहुत सारे परिवर्तन हुए। उत्पादन कार्य जो पहले हाथ से किये जाते थे अब मशीनों से होने लगे। नवीन आधारभूत धातुओं मुख्यत: लोहे के मिश्रण के साथ निर्मित धातु का प्रयोग होने लगा। नवीन ऊर्जा स्रोतों, जैसे – कोयला, पेट्रोलियम, विद्युत, वाष्प इंजन, ताप इंजन आदि का उपयोग होने लगा।

उत्पादन अब कारखानों में किया जाने लगा जिसमें श्रम विभाजन, कार्य कुशलता तथा विशेषज्ञ कार्यशीलता का समावेश था। कारखाना प्रणाली के उद्‌भव और विकास के फलस्वरूप पूंजीवाद का उदय हुआ और पूंजी संचय की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। वाष्प चालित रेल इंजन और यंत्र चालित जहाज़ों के कारण यातायात में आमूलचूल परिवर्तन हो गया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि हुई, सामाजिक संरचना में परिवर्तन हुआ। सामंतों की जगह उद्योगपति एवं बुर्जुआ वर्ग अस्तित्व में आए। वस्तुत: यह परिवर्तन 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में अत्यंत तीव्र गति से हुए और इनके परिणाम भी क्रांतिकारी एवं युगांतकारी थे। अत: इन परिवर्तनों को औद्योगिक क्रांति के नाम से जाना गया।

औद्योगिक क्रांति के कारण
(Causes of Industrial Revolution)

- **पुनर्जागरण एवं धर्म सुधार:** पुनर्जागरण से यूरोप में आधुनिक युग की शुरुआत हुई। भौतिक एवं तार्किक विचारों की प्रगति ने विज्ञान के विकास में सहयोग प्रदान किया। विज्ञान के विकास ने तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी का विकास किया। पुनर्जागरण ने भौगोलिक खोजों को भी प्रोत्साहित किया, जिसके फलस्वरूप यूरोप के लोगों को भौतिक एवं मानव संसाधनों का एक विस्तृत खजाना प्राप्त हो गया।
- **कृषि क्रांति:** कृषि क्रांति को औद्योगिक क्रांति की पूर्व पीठिका के रूप में देखा जाता है। कृषि क्रांति के द्वारा मध्ययुगीन खुले व बिखरे खेतों को एकीकृत कर बड़े पैमाने पर कृषि आरंभ हुई। इससे फसल उत्पादन में वृद्धि हुई। उद्योगों हेतु कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल किये जाने वाले कृषोपज की प्रचुर उपलब्धता के साथ लोगों के लिये रोज़गार के नए अवसर भी उपलब्ध हुए। इस प्रकार कृषि ने विनिर्मित उद्योग के लिये कच्चा माल उपलब्ध कराकर अर्थव्यवस्था को अतिरिक्त आबादी वहन करने की क्षमता प्रदान की इससे औद्योगिकरण को बढ़ावा मिला।
- **जनसंख्या में वृद्धि:** यूरोप में बढ़ती जनसंख्या वृद्धि के कारण रोज़गार और दैनिक उपयोग की वस्तुओं की मांग में भारी वृद्धि हुई जिसकी आपूर्ति कृषि एवं कुटीर उद्योग से संभव नहीं थी। परिणामत: बड़े स्तर पर उत्पादन करने हेतु मशीन एवं कारखाना आधारित उद्योगों के अनुकूल वातावरण तैयार हुआ।
- **कारखाना पद्धति का विकास:** औद्योगिक क्रांति से पूर्व यूरोप में उत्पादन Putting Out पद्धति या घरेलू पद्धति पर आधारित था। इस व्यवस्था के अंतर्गत पूंजीपति, व्यापारी, कारीगरों को कच्चा माल देता था तथा कारीगर अपने निवास स्थान पर ही अपने औज़ारों से ही वस्तुओं का निर्माण करते थे। अब पूंजीपतियों ने अपनी सुविधा के लिये सारे कारीगरों को एक जगह एकत्रित कर उत्पादन आरंभ करवाने की योजना बनाई तो स्वत: ही कारखाना पद्धति का जन्म हुआ जिसने औद्योगिक क्रांति के लिये आधारभूत ढाँचा उपलब्ध कराया। कारखाना पद्धति के विकसित होने से श्रम विभाजन एवं कार्य दक्षता बढ़ी। परिणामत: उत्पादन में तीव्रता आई।
- **राष्ट्रवाद का उदय:** भौगोलिक खोजों, विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्रों में उपलब्धियों, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा प्रतियोगात्मक एवं तुलनात्मक समृद्धि से एक राष्ट्र की शक्ति एवं हैसियत का आकलन किया जाने लगा। जब इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति हुई और उसने यूरोप में अपनी सर्वश्रेष्ठता स्थापित की तो यूरोप के अन्य राज्य राष्ट्रवादी भावना से प्रेरित होकर औद्योगिक विकास के कार्यों में प्रवृत्त हुए।
- **वाणिज्यवाद:** 17वीं शताब्दी के वाणिज्यवाद/व्यावसायिक क्रांति के तहत व्यापार-वाणिज्य में भारी वृद्धि हुई जिससे यूरोप के व्यापारियों के पास भारी धन संपदा संचित हो गई थी। व्यापार में पूंजी की आवश्यकता से अधिक धन संगृहीत हो चुका था। इस अधिशेष धन ने व्यापारिक पूंजी का औद्योगिक पूंजी में रूपांतरण का मार्ग साफ किया जिसका उपयोग औद्योगिक विकास में हुआ।

इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति का आरंभ
(Beginning of Industrial Revolution in England)

इन कारकों की जाँच एवं विश्लेषण निम्नलिखित बिंदुओं के तहत किया जा सकता है।

प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों की उपलब्धता
(Availability of Natural and Human Resources)

- **लोहा, कोयला के अकूत भंडार:** इंग्लैंड के पास कोयले एवं लोहे के विशाल भंडार थे और दोनों खनिज एक स्थान पर उपलब्ध थे। इन दोनों खनिजों ने इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति को तीव्रता प्रदान की।
- **अर्द्ध-कुशल कारीगरों की उपलब्धता:** इंग्लैंड की सामंती व्यवस्था के पतन से वहाँ वे कपड़ा बुनने, जूता बनाने, लकड़ी पर नक्काशी करने और हस्त-कौशल के अतिरिक्त कई पेशों में लग गए। जब औद्योगिक क्रांति प्रारंभ हुई, तब ये लोग मशीनों पर काम करने हेतु उपलब्ध हो गए।

43 प्रथम विश्व युद्ध (First World War)

प्रथम विश्व युद्ध विश्व इतिहास की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना है। यह विश्व स्तर पर लड़ा जाने वाला पहला विनाशकारी युद्ध था। इस युद्ध में विश्व के लगभग सभी प्रभावशाली राष्ट्रों ने भाग लिया। ये राष्ट्र दो गुटों में विभाजित थे- मित्र राष्ट्र एवं केंद्रीय शक्ति। इसमें मित्र राष्ट्रों की विजय तथा केंद्रीय शक्तियों की पराजय हुई।

प्रथम विश्व युद्ध, का विस्फोट एक यूरोपीय युद्ध के रूप में हुआ था लेकिन इसने शीघ्र ही व्यापक रूप धारण कर लिया। इसमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से विश्व के लगभग सभी देश सम्मिलित थे। प्रथम विश्व युद्ध 28 जुलाई, 1914 को आरंभ होकर 11 नवंबर, 1918 तक चला। यह अत्यंत भीषण युद्ध था जो मानवता के इतिहास में वीभत्स सिद्ध हुआ। वास्तव में **यह युद्ध साम्राज्यवादी शक्तियों के मध्य औपनिवेशिक बँटवारे को लेकर हुआ था।** इस युद्ध के परिणाम जहाँ मानवता विरोधी थे, वहीं मानव कल्याण का मार्ग भी इस युद्ध ने प्रशस्त किया। सदियों की वैज्ञानिक प्रगति का नकारात्मक पक्ष इस युद्ध में अधिक स्पष्ट हुआ।

प्रथम विश्व युद्ध (मित्र राष्ट्र, धुरी राष्ट्र और तटस्थ राष्ट्र)

प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व की राजनीतिक पृष्ठभूमि (Political Background before First World War)

यूरोप की स्थिति (Situation of Europe): युद्ध के पूर्व यूरोप की 6 राजनीतिक शक्तियाँ क्रमशः इंग्लैंड, फ्राँस, रूस, ऑस्ट्रिया, जर्मनी एवं इटली थीं। औद्योगिक क्रांति ने उपनिवेशवाद को जन्म दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोप के विकसित देशों ने एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों में औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर लिये थे। अभी भी यूरोपीय देशों के मध्य औपनिवेशिक प्रतियोगिता चल रही थी, जो इन देशों की आंतरिक और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित कर रही थी। पूर्वी यूरोप एवं बाल्कन प्रदेशों में यूरोपीय राष्ट्र अपनी-अपनी सर्वोच्चता स्थापित करना चाहते थे। अतः यूरोप के अंदर साम्राज्यवादी भावना विद्यमान थी।

जर्मनी: जर्मनी, इंग्लैंड के एक सशक्त विरोधी के रूप में उभर रहा था। बिस्मार्क के कार्यकाल (1870-1890 ई.) तक जर्मनी की विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य फ्राँस को मित्र विहीन रखना था। किंतु 1890 के बाद जर्मन शासक विलियम कैसर द्वितीय की विदेश नीति का रुख आक्रामक था। वह संपूर्ण यूरोप में ही नहीं बल्कि विश्व में अपनी सत्ता स्थापित करना चाहता था। उसने जर्मनी की सैनिक शक्ति को बढ़ाने का, विशेषकर नौसेना के रूप में वृद्धि करने का प्रयास किया। 1900 ई. में **जर्मनी नौसेना अधिनियम** पारित हुआ, औपनिवेशिक विस्तार के मुद्दे पर भी इंग्लैंड और जर्मनी के हित एक-दूसरे से टकराते थे। बिस्मार्क के काल में जहाँ फ्राँस को जर्मनी का शत्रु माना जाता था, वहीं अब इंग्लैंड की जर्मनी से शत्रुता बढ़ने लगी थी। बिस्मार्क के काल में **त्रिगुट संधि (Triple Alliance ट्रिपल एलायंस)** 1882 **में हुई थी जिसमें जर्मनी, ऑस्ट्रिया और इटली** सम्मिलित थे। इसके तहत बाह्य आक्रमण की स्थिति में तीनों राष्ट्रों ने एक-दूसरे की सहायता का वचन दिया।

इंग्लैंड: जर्मनी की विदेश नीति ने इंग्लैंड को अपनी पृथक्तावादी नीति छोड़ने के लिये बाध्य कर दिया। अतः उसने अपनी सुरक्षा के लिये सैनिक संधियाँ करना आवश्यक समझा। इसी क्रम में इंग्लैंड ने 1902 में जापान के साथ और 1904 में फ्राँस के साथ संधि की। 1907 में इंग्लैंड ने फ्राँस और रूस के साथ संधि कर **जर्मनी के त्रिगुट के विरुद्ध त्रिवर्ग मैत्री-संघ (Triple Entente)** का निर्माण किया। इस प्रकार यूरोप में दो विरोधी गुटों का निर्माण हो गया, जो प्रथम विश्व युद्ध का कारण बना।

फ्राँस: फ्राँस 1870 में प्रशा (जर्मनी) के हाथों हार को भूला नहीं था। उसके **अल्सास-लॉरेन स्थित खनिज भंडार के क्षेत्र** जर्मनी ने ले लिये थे। फ्राँस पुनः इन्हें प्राप्त करने के लिये लालायित था। जर्मनी को यह भय बराबर बना हुआ था कि अवसर पाते ही फ्राँस उस पर आक्रमण कर सकता है।

रूस: रूस औपनिवेशिक प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं था, क्योंकि इसका औद्योगिक विकास इस स्तर पर नहीं पहुँचा था, किंतु रूस पूर्वी यूरोप की एक क्षेत्रीय शक्ति बनने के लिये प्रयासरत था। आकार की दृष्टि से रूस यूरोप का सबसे बड़ा देश था। 1907 में रूस, फ्राँस एवं इंग्लैंड का सहयोगी बन गया था। अपने क्षेत्रीय विस्तार की योजनाओं के अंतर्गत रूस बॉल्कन राज्यों से जर्मनी एवं ऑस्ट्रिया-हंगरी के प्रभाव को समाप्त कर अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहता था।

बाल्कन राज्य: बाल्कन राज्यों में एक ओर राष्ट्रीय आंदोलन बल पकड़ रहा था, वहीं दूसरी ओर अनेक शक्तियाँ उन पर अपना आधिपत्य जमाने के लिये लालायित थीं। सर्बिया बाल्कन राज्यों की स्लाव जाति को एक राज्य के रूप में संगठित करना चाहता था। यूनान अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करने के लिये यूनानी साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था। बाल्कन प्रदेशों में ईसाई और मुसलमानों के मध्य संघर्ष की स्थिति थी। यहाँ के राजा तुर्की के प्रभावों को समाप्त कर देना चाहते थे। यहाँ

44 द्वितीय विश्व युद्ध
(Second World War)

प्रथम विश्व युद्ध के बाद जो घटनाचक्र आरंभ हुआ, वह विश्व को दूसरे विश्व युद्ध की ओर ले गया। वैश्विक शांति के प्रयासों के लिये स्थापित राष्ट्रसंघ की स्थापना निरर्थक साबित हुई। जर्मनी वर्साय संधि के अपमान की ज्वाला में जल रहा था तो इटली प्रादेशिक प्रावधानों से असंतुष्ट था। दोनों ही बदले की भावना से उद्वेलित होकर अपनी सैनिक और आर्थिक शक्ति बढ़ा रहे थे। इंग्लैंड और फ्रांँस की मौन स्वीकृति (तुष्टीकरण) उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ावा दे रही थी। उग्रराष्ट्रवाद एवं आर्थिक-राजनीतिक संकट के साए में इटली एवं जर्मनी में अधिनायकवादी सत्ता की स्थापना ने युद्ध की स्थिति को स्वाभाविक बनाकर द्वितीय विश्व युद्ध को अपरिहार्य बना दिया। वस्तुत: कहा जा सकता है कि **द्वितीय विश्व युद्ध प्रथम विश्व युद्ध के परिणामों में निहित था।** इस युद्ध ने प्रथम विश्व युद्ध की अपेक्षा मानव जीवन को अधिक संपूर्णता के साथ प्रभावित किया।

द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व की पृष्ठभूमि एवं घटनाक्रम (Background and Events of the Second World War)

- प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद पेरिस शांति सम्मेलन हुआ। पेरिस शांति समझौते ने प्रथम विश्व युद्ध को तो समाप्त कर दिया था। किंतु इसने द्वितीय विश्व युद्ध के बीज भी बो दिये थे।
- प्रथम विश्व युद्ध के बाद 20 वर्षों का लंबा काल अंतर्राष्ट्रीय संकट का काल था। इस समायावधि में महाशक्तियों के बीच आपस में सीधी मुठभेड़ तो नहीं हुई किंतु हिंसक सैनिक अभियान इन 20 वर्षों में जारी रहे, जैसे- स्पेन का गृहयुद्ध, इटली का अबीसनिया पर आक्रमण, जापान का कोरिया एवं मंचूरिया में साम्राज्यवादी विस्तार, जर्मनी द्वारा पौलैंड की सीमाओं का अतिक्रमण जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय वातावरण को तानावों से भर दिया था।

द्वितीय विश्व युद्ध के कारण (Causes of Second World War)

- **पेरिस शांति सम्मेलन (Paris Peace Conference):** पेरिस शांति समझौते ने प्रथम विश्व युद्ध को तो समाप्त कर दिया था किंतु द्वितीय विश्व युद्ध का बीज भी बो दिया था। मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी व उसके सहयोगियों पर वर्साय की कठोर व अपमानजनक संधि लाद दी। वर्साय की संधि के तहत जर्मनी को युद्ध का दोषी ठहराया गया और जर्मनी को आर्थिक, भौगोलिक सैनिक दृष्टि से पंगु बनाने का प्रयास किया गया जिससे जर्मनी भविष्य में सिर न उठा सके। उस पर अपार आर्थिक दंड थोप दिये गए। उस समय विवश जर्मनी इस कठोर और अपमानजनक संधि को अस्वीकार करने की स्थिति में नहीं था। युद्ध के वर्षों में जर्मनी की अर्थव्यवस्था बुरी तरह तहस-नहस हो चुकी थी। मगर उसकी क्षतिपूर्ति की बात किसी ने नहीं सोची। जर्मनी के कुछ भू-भागों (एल्सेस-लॉरेन, सार, राइनलैंड) को फ्रांँस की सुरक्षा की दृष्टि से सामरिक रूप से संवेदनशील मानते हुए अलग कर दिया गया। इनका सम्मिलित प्रभाव जर्मनी के स्वाभिमान को ठेस पहुँचाने वाला और उसे अनावश्यक रूप से प्रताड़ित करने वाला सिद्ध हुआ। इस घोर आर्थिक अभाव और सामाजिक असंतोष के कारण जर्मनी में राजनीतिक अस्थिरता खतरनाक रूप से फैलने लगी। जर्मनी में नाज़ीवाद के उद्‌भव के संदर्भ में इसे देखा जा सकता है। जर्मनी में प्रथम विश्वयुद्ध के समय **वाइमर गणतंत्र** की स्थापना की गई थी और वाइमर गणतंत्र पर वर्साय की संधि पर हस्ताक्षर करने का आरोप था। अत: वर्साय की संधि को भंग कर अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जर्मनी की प्रतिष्ठा को स्थापित करना हिटलर का मुख्य उद्देश्य बन गया और अपने विस्तारवादी कार्यक्रम के तहत उसने इस उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास किया। इस प्रकार उसने विश्व को दूसरे विश्व युद्ध की दहलीज़ पर पहुँचा दिया।
  - पेरिस शांति सम्मेलन में सामूहिक सुरक्षा एवं अंतर्राष्ट्रीय शांति हेतु राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई थी और प्रारंभ में पराजित राष्ट्रों को इसकी सदस्यता से वंचित रखना इस बात का द्योतक था कि राष्ट्रसंघ विजयी राष्ट्रों का गुट है। रूस राष्ट्रसंघ को अपने विरुद्ध पश्चिमी राष्ट्रों का एक साम्यवादी षड्‌यंत्र मानता था। मित्र राष्ट्रों ने राष्ट्रसंघ को अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिये प्रयोग किया। जापान ने जब मंचूरिया पर अधिकार किया तो राष्ट्रसंघ विधवा स्त्री की तरह हाथ-पाँव पीटकर रह गया। राष्ट्रसंघ की असफलता ने विश्व को द्वितीय विश्व युद्ध की मंज़िल तक पहुँचाया।
  - पेरिस शांति सम्मेलन में वर्साय की संधि के तहत जर्मनी को पूर्णत: शक्तिहीन करने के लिये नि:शस्त्रीकरण की योजना लागू की गई। यद्यपि मित्र राष्ट्रों ने व्यापक नि:शस्त्रीकरण की बात की थी जिससे सामूहिक सुरक्षा स्थापित हो सके किंतु यह नि:शस्त्रीकरण योजना सिर्फ पराजित राष्ट्रों के संदर्भ में लागू की गई। इटली और जर्मनी ने आगे चलकर नि:शस्त्रीकरण सम्मेलन से अपने को अलग कर लिया और सैन्यीकरण पर बल दिया। इस तरह शस्त्रीकरण की भावना का विस्तार हुआ।
- **वैश्विक आर्थिक मंदी (Global Economic Recession):** प्रथम विश्व युद्ध के बाद सभी देशों की आर्थिक स्थिति जर्जर हो गई थी। युद्ध व्यय एवं कर्ज़ की राशि अत्यंत बढ़ गई थी। अत: पेरिस शांति सम्मेलन में जर्मनी और पराजित राष्ट्रों के साथ क्षतिपूर्ति संबंधी संधियाँ कर संकट दूर करने का प्रयास किया गया। युद्ध के समय प्रचारित राष्ट्रीयता की भावना से लोग अपने देश में बनी

45 एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका में साम्राज्यवाद
(Imperialism In Asia, Africa and Latin America)

साम्राज्यवाद (Imperialism)

अर्थ (Meaning): साम्राज्यवाद शब्द अंग्रेजी भाषा के Imperialism का हिन्दी रूपातरंण है। 'इंपीरियलिज्म' शब्द लैटिन भाषा के इंपैरेटर (Imperator) शब्द से बना है, जिसका संबंध केंद्रीकृत सत्ता की अधिनायकवादी शक्तियों तथा प्रशासन की मनमानी शक्तियों से था। साम्राज्यवाद से आशय है, एक देश द्वारा दूसरे देश (उपनिवेश) को अपने प्रत्यक्ष नियंत्रण में रखकर उससे अपने आर्थिक और राजनीतिक हितों की पूर्ति करना है। साम्राज्यवाद के अंतर्गत एक राष्ट्र अपनी सीमाओं से बाहर जाकर दूसरे देशों एवं राज्यों में हस्तक्षेप करता है या उन पर राजनीतिक रूप से आधिपत्य स्थापित करता है।

उपनिवेशवाद *(Colonialism)*

उपनिवेशवाद (Colonialism) लैटिन भाषा का शब्द है। 17वीं 18वीं शताब्दी में हुई वाणिज्यवादी क्रांति के फलस्वरूप उपनिवेशवाद की विचारधारा विकसित हुई। इसका मूल तत्त्व आर्थिक शोषण में निहित है। उपनिवेशवाद से आशय, समृद्ध एवं शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा विजित लोगों के जीवन तथा संस्कृति पर प्रभुत्व स्थापित करने की एक व्यापक व्यवस्था से है। इसमें उपनिवेश के लोगों के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन पर औपनिवेशिक शक्ति का नियंत्रण होता है। यह नियंत्रण परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष किसी भी तरह का हो सकता है। साम्राज्यवाद के प्रसार हेतु सैन्य शक्ति एवं युद्ध अनिवार्य होता है जबकि उपनिवेशवाद में ऐसी प्रवृत्ति का अभाव होता है। सामान्यत: उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद अलग-अलग अवधारणा है।

- उदाहरण- उत्तरी अमेरिका, भारत, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड।

उपनिवेशवाद/साम्राज्यवाद के प्रेरक तत्त्व *(Stimulating Factors of Imperialism/Colonialism)*

- **अतिरिक्त पूंजी का होना:** औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप यूरोप के देशों में धन का अत्यधिक संचय हुआ। इस अतिरिक्त संचित पूंजी को यदि यूरोप के देशों में पुन: लगाया जाता तो लाभ बहुत कम मिलता जबकि पिछड़े हुए देशों में श्रम सस्ता होने और प्रतियोगिता शून्य होने से अत्यधिक लाभ की संभावना थी। इसी कारण पूंजी को उपनिवेशों में लगाने की होड़ प्रारंभ हुई।
- **कच्चे माल की आवश्यकता:** यूरोपीय देशों को अपने औद्योगिक उत्पादन के लिये कच्चे माल और अनाज की ज़रूरत थी, जैसे- कपास, रबर, टिन, जूट, लोहा आदि। अत: ये औद्योगिक देश औपनिवेशिक प्रसार में लग गए, जहाँ से उन्हें सुगमतापूर्वक सस्ते दामों पर कच्चा माल मिल सके।
- **बाज़ार की आवश्यकता:** औद्योगिक देशों को अपने निर्मित माल की बिक्री के लिये एक बड़े बाज़ार की ज़रूरत थी, ऐसे में नए बाज़ारों की खोज के लिये उपनिवेश बनाए गए।
- **तकनीकी विकास:** यूरोप में हुए तकनीकी विकास ने रेलवे, डाक-तार, टेलीफोन आदि के माध्यम से देश और काल पर अभूतपूर्व विजय प्राप्त की। नवीन संचार साधनों के ज़रिये उपनिवेशों पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करना संभव हो पाया।
- **जनसंख्या का आधिक्य:** 19वीं सदी में यूरोप में बढ़ती हुई जनसंख्या से रोज़गार और आवास की समस्या पैदा हुई, इस समस्या के समाधान के रूप में यह विचार दिया गया कि उपनिवेशों की स्थापना कर वहाँ सैनिक एवं शासकीय अधिकारियों के रूप में लोगों को बसा दिया जाए।
- **राष्ट्रीय गौरव की स्थापना:** कुछ देशों ने राजनीतिक उद्देश्य से परिचालित होकर राष्ट्रीय गौरव में वृद्धि करने के लिये औपनिवेशिक विस्तार की नीति अपनाई। इटली ने अपना राष्ट्रीय महत्त्व बढ़ाने के लिये लीबिया पर अधिकार कर लिया, तो मिस्र में अधिकार के लिये इंग्लैंड और फ्राँस के बीच प्रतिस्पर्द्धा बढ़ी।
- **ईसाई मिशनरियों की भूमिका:** यूरोपीय ईसाई मिशनरियों ने धर्म प्रचार के उद्देश्य से औपनिवेशिक विस्तार को जायज़ ठहराया।

नई दुनिया का शोषण *(Exploitation of New World)*

- यूरोप की विकसित वाणिज्यिक संस्थाओं, जैसे- बैंक, मुद्रा प्रणाली, संयुक्त उद्यम, साख सुविधा आदि ने पूंजीवादी उद्यमियों को नई दुनिया के शोषण हेतु विशेष सुविधाएँ प्रदान कीं। स्पेन ने नई दुनिया पर अपने प्रभुत्व को अक्षुण्ण रखने के लिये गैर-स्पेनी व्यापारियों के लिये वहाँ लाइसेंस जारी किये और उनसे अत्यधिक दर पर चुंगी वसूली। पुर्तगाल ने ब्राज़ील में अपना उपनिवेश स्थापित कर संसाधनों का दोहन करना प्रारंभ किया। ब्राज़ील में उष्ण जलवायु के कारण पुर्तगालियों के लिये काम करना कठिन था। अत: उन्होंने अफ्रीकियों को दास बनाकर लाना आरंभ किया। स्पेन व पुर्तगाल सहित अन्य यूरोपीय देशों ने पेरू, बोलीविया, मेक्सिको की खानों में खनन कर सोना-चाँदी जैसी बहुमूल्य धातुओं को प्राप्त किया। खनन के अतिरिक्त अमेरिका के मूल निवासियों की भूमि छीनकर वहाँ गेहूँ, चावल, गन्ना, कपास की खेती आरंभ की गई और कृषि उत्पादों का यूरोप में निर्यात किया जाने लगा। इस निर्यात से होने वाले लाभ में मूल निवासियों का हिस्सा नगण्य था। नई दुनिया के लोगों से जबरन श्रम करवाया गया और विरोध करने पर क्रूरतापूर्वक उत्पीड़न किया गया।
- गन्ना, कॉफी, कपास एवं तंबाकू की खेती ने नई दुनिया में स्थापित हो चुके यूरोपीय व्यापारियों और निवासियों के लिये लाभ के तमाम अवसर उपलब्ध कराए। उत्पादन की ज़रूरतों को पूरा करने के लिये दास व्यापार का विकास हुआ। यह दास व्यापार नई दुनिया की शोषण शृंखला को अफ्रीकी महाद्वीप से संबद्ध करता था। इस तरह से नई दुनिया के शोषण से यूरोप की समृद्धि में वृद्धि हुई और नई दुनिया में उत्तरोत्तर गिरावट।

46 एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका में उपनिवेशवाद
(Colonialism in Asia, Africa & Latin America)

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद की जकड़न में फँसे राष्ट्रों के स्वतंत्र होने की प्रक्रिया तीव्र हुई, और लगभग 25 वर्षों के अंदर ही एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में नव-स्वतंत्र देश अस्तित्व में आए। इन नव स्वतंत्र देशों में से अधिकांश किसी गुट विशेष में सम्मिलित नहीं हुए बल्कि इन्होंने गुट-निरपेक्षता की नीति का अवलंबन किया और तृतीय विश्व का भाग बने।

मिस्र का स्वाधीनता आंदोलन
(Independence Movement of Egypt)

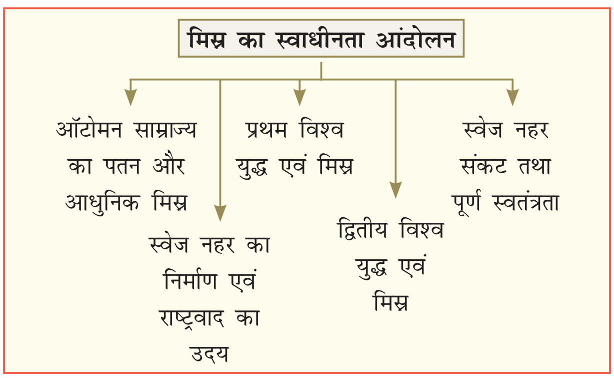

ऑटोमन साम्राज्य का पतन और आधुनिक मिस्र
(Decline Ottoman Empire and Modern Egypt)

- मिस्र, तुर्की ऑटोमन साम्राज्य के अंतर्गत पूर्वी अफ्रीका में बसा हुआ एक अरब राष्ट्र था। 19वीं शताब्दी में ऑटोमन सुल्तान की अधीनता नाममात्र की रह गई थी। मिस्र पर प्रभुत्व की स्थापना के लिये अंग्रेज़ों और फ्राँसीसियों के बीच संघर्ष भी शुरू हुआ और इस दिशा में पहला प्रयास नेपोलियन बोनापार्ट द्वारा 1798 में किया गया, जब एक विशाल सेना लेकर वह मिस्र के लिये रवाना हुआ। 1799 में नेपोलियन कुछ सेना मिस्र में छोड़कर फ्राँस वापस आ गया। नेपोलियन के पलायन के बाद उत्पन्न अराजक स्थिति का लाभ उठाते हुए 1801 में ऑटोमन साम्राज्य की सेनाओं ने ब्रिटेन की सहायता से फ्राँसीसियों को मिस्र से खदेड़ दिया। तुर्की सेना के एक अधिकारी मुहम्मद अली (मेहमत अली) ने 1805 में स्वयं को मिस्र का शासक घोषित कर दिया। मेहमत अली ने मिस्र के आधुनिकीकरण का प्रयास किया।
- आधुनिकीकरण के क्रम में **मेहमत अली** ने पश्चिमी ढंग से सेना का संगठन किया। पश्चिमी शिक्षा पद्धति को लागू किया। इंजीनियरिंग, चिकित्सा आदि की शिक्षा देने के लिये विद्यालय खोले गए। यूरोपीय अध्यापकों को मिस्र में नियुक्त किया गया। प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना की गई और समाचार-पत्रों का प्रकाशन शुरू किया।
- मेहमत अली ने अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में भी सुधार कार्यक्रम लागू किये। उसने अनाज, चीनी, नील आदि के निर्यात पर सरकारी एकाधिकार स्थापित किया। खाद्यान्नों के व्यापार पर भी सरकारी नियंत्रण स्थापित किया गया। वस्तुओं के मूल्य का निर्धारण सरकार करने लगी। मुहम्मद अली ने अपनी विदेश नीति के तहत राज्य विस्तार की नीति अपनाई, उसने सूडान पर अधिकार किया और अपने पुत्र इब्राहिम पाशा को सीरिया पर आक्रमण करने के लिये भेजा और वहाँ अपना नियंत्रण स्थापित किया। इस कदम से ब्रिटेन और मिस्र के बीच संबंध तनावपूर्ण हो गए। जहाँ तक इन सुधारों के मूल्यांकन की बात है तो ये सुधार असफल रहे क्योंकि यह अत्यधिक शीघ्रता से लागू किये गए थे और आधुनिकीकरण से कहीं ज्यादा पश्चिमीकरण पर बल दिया गया।
- 1849 में मुहम्मद अली की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अब्बास प्रथम (1849-54) शासक हुआ। वो परंपरावादी था और मिस्र में पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति के प्रवेश का विरोधी था अत: उसने मुहम्मद अली द्वारा किये गए सुधारों को समाप्त कर दिया।

स्वेज़ नहर का निर्माण एवं राष्ट्रवाद का उदय
(Construction of Suez Canal and Rise of Nationalism)

- अब्बास प्रथम की मृत्यु के पश्चात् सईद पाशा (1854-63) मिस्र का खदीब (शासक) बना। यह प्रगतिशील विचारों से युक्त था और इसने शासन में कई सुधार किये। इसी के काल में स्वेज़ नहर के निर्माण का कार्य फ्राँसीसी कंपनी को सौंपा गया, यह नहर भूमध्य सागर और लाल सागर को जोड़ती थी। इस नहर का निर्माण 1859 में शुरू हुआ और यह 1869 में बनकर तैयार हुई।
- 1863 में इस्माइल पाशा (1863-79) मिस्र का शासक हुआ, इसने मिस्र का यूरोपीयकरण करना अपना लक्ष्य बनाया। अत: उसने पश्चिमीकरण की प्रक्रिया को तेज़ कर एक ही साथ कई कार्यक्रम, निर्माण कार्य लागू किये। फलत: मिस्र कर्ज़ के दलदल में डूब गया। अत: कर्ज़ चुकाने के लिये इस्माइल ने 1875 में स्वेज़ नहर के अधिकांश शेयर ब्रिटेन को बेच दिये, परंतु वह संपूर्ण विदेशी कर्ज़ नहीं चुका सका। ब्रिटेन स्वेज़ नहर का सबसे बड़ा शेयरधारक बन गया। इस समय इंग्लैंड का प्रधानमंत्री डिज़रैली था जो घोर साम्राज्यवादी था अब स्वेज़ नहर के दो यूरोपीय हिस्सेदार बन गए, एक फ्राँस और दूसरा इंग्लैंड और यहीं से मिस्र पर ब्रिटेन की दिलचस्पी का दौर शुरू हुआ। ब्रिटेन ने पहले व्यापारिक, फिर राजनीतिक तथा सैनिक नियंत्रण स्थापित करने का पूर्ण प्रयास किया।
- जैसे-जैसे ऋण बढ़ता गया, मिस्र पर ब्रिटेन तथा फ्राँस का नियंत्रण बढ़ गया। जब इस्माइल पाशा ने मिस्र से यूरोपीय प्रभाव को समाप्त करने का प्रयास किया तो ब्रिटेन ने एक षड्यंत्र के तहत इस्माइल को हटाकर उसके पुत्र तौफीक पाशा को शासक नियुक्त किया। उसके पश्चात् संपूर्ण व्यवस्था में ब्रिटेन और फ्राँस का हस्तक्षेप बढ़ गया।

घर बैठे IAS/PCS की संपूर्ण तैयारी करने के लिये आपका स्वागत है

Drishti Learning App

पर

GET IT ON Google Play

अपने एंड्रॉयड फोन पर आज ही इंस्टॉल करें

ऐप की विशेषताएँ

- टीम दृष्टि द्वारा दी जाने वाली सभी सुविधाएँ एक ही मंच पर।
- ऑनलाइन, पेनड्राइव मोड में कक्षाएँ उपलब्ध।
- प्रिलिम्स और मेन्स की टेस्ट सीरीज़ भी ऐप के माध्यम से उपलब्ध।
- सभी पुस्तकें, मैगज़ीन्स, डिस्टेंस लर्निंग प्रोग्राम के नोट्स देखने व मंगवाने की सुविधा।

ऑनलाइन कोर्स की विशेषताएँ

- घर बैठे देश के सर्वोत्कृष्ट अध्यापकों से पढ़ने की सुविधा।
- अब दिल्ली या किसी बड़े शहर जाकर पढ़ने की मजबूरी नहीं।
- IAS और PCS के कोर्स उपलब्ध।
- ऑनलाइन कोर्स करने के बाद, क्लासरूम कोर्स में प्रवेश लेने पर शुल्क में विशेष छूट।
- हर क्लास अपनी सुविधा से असीमित बार देखने की सुविधा।
- उत्तर लिखकर चेक कराने तथा संदेह-समाधान की व्यवस्था भी शीघ्र उपलब्ध।
- कई विषयों के कोर्स ऑनलाइन और पेनड्राइव मोड में भी उपलब्ध।

दृष्टि आई.ए.एस. (दिल्ली शाखा) का पता
641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-09
8448485519, 87501 87501, 011-47532596

दृष्टि आई.ए.एस. (प्रयागराज शाखा) का पता
ताशकंद मार्ग, निकट पत्रिका चौराहा, सिविल लाइन्स, प्रयागराज
8448485518, 8750187501, 8929439702

दृष्टि आई.ए.एस. (राजस्थान शाखा) का पता
प्लॉट नंबर-45 व 45-A, हर्ष टावर-2, मेन टोंक रोड़, वसुंधरा कॉलोनी, जयपुर राजस्थान-302018
8448485518, 8750187501, 8929439702

दृष्टि पब्लिकेशन्स की प्रमुख पुस्तकें

प्रिलिम्स प्रैक्टिस सीरीज़ की पुस्तकें

RAS Book सीरीज़ की पुस्तकें

641, Ist Floor, Dr. Mukherji Nagar, Delhi-9

Ph.: 011-47532596, 87501 87501

Website: www.drishtiias.com

E-mail: booksteam@groupdrishti.com

मूल्य : ₹495